आर्य शब्द का वास्तविक अर्थ

[डॉ० शिवपूजन सिंह एम० ए०]

आर्यसमाज के प्रवर्तक **महर्षि दयानन्द जी सरस्वती** 'आर्य' शब्द के सम्बन्ध में लिखते हैं—"आर्य—जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्य विद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको आर्य कहते हैं।"[1] "जैसे 'आर्य, श्रेष्ठ और 'दस्यु' दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूँ।"[2]

"श्रेष्ठों का नाम 'आर्य' विद्वान् देव और दुष्टों के 'दस्यु' अर्थात् डाकू-मूर्ख नाम होने से 'आर्य' और 'दस्यु' दो नाम हुए।...आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम 'आर्य' और मूर्खों का नाम शूद्र और 'अनार्य' अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।"[3]

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के लेख से ही स्पष्ट प्रकट होता है कि आर्यावर्त (भारतवर्ष) में जो सदा रहते आए हैं और जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार भेद हैं। जो विद्वान् देव हैं वे **'आर्य'** हैं वर्तमान काल में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् यही 'आर्य' जाति भूल से अपने को 'हिन्दू' कहती है।

व्याकरण से सिद्धि— "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" (अष्टाध्यी ३/१/१०३) इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में 'ऋ' धातु से 'यत्' प्रत्यय होकर 'ऋयत्' बना और तकार को 'इत्' संज्ञा हुई।

"सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः" से गुण होकर "उरण् रपरः" से रपर हो "अर्य" बना। अब इसकी प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सु' विभक्ति आयी और 'सु' को 'रुत्व' विसर्ग होकर 'अर्यः' बना।

---

१. "आर्योद्देश्य रत्नमाला" ४० २. "सत्यार्थप्रकाशः, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः २९
३. "सत्यार्थ प्रकाशः, अष्टम-समुल्लास।

["ऐसी व्यवस्था होते हुए हमारे देश का नाम 'आर्यस्थान' 'आर्यखण्ड' होना चाहिए, सो उसे छोड़कर न जाने 'हिन्दुस्थान' यह नाम कहां से आ निकला? भाई श्रोतागण! 'हिन्दु' शब्द का अर्थ काला, काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्थान कहने से काले, काफिर, चोर लोगों की जगह अथवा देश ऐसा अर्थ होता है। भाई! इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो? और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अभिज्ञात इत्यादि और आर्यावर्त कहने से ऐसों का देश, ऐसा अर्थ होता है। क्या तुम अपना मूल का नाम भी भूल गए? हां, हम लोगों की यह स्थिति देखकर किसके हृदय को क्लेश न होगा? अस्तु, सज्जन जन! आज से 'हिन्दु' नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावर्त इन नामों का अभिमान करो। गुणभ्रष्ट हम लोग हुए तो हुए, परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमें न होना चाहिए।"—['पूना प्रवचन' आठवां प्रवचन, पृष्ठ ९५-९६ मार्च १९६९ ई० ऋषि देवी रूपलाल कपूर पब्लिक ट्रस्ट, देहली]

स्वामी और वैश्य से भिन्न अर्थ में 'ऋ' धातु से "ऋहलोर्ण्यत्" (अष्टा० ३/१/१२४) इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर 'ण्यत्' में 'णकार' और 'तकार' की इत्संज्ञा होकर लोप हो गया ।

"अचो ञ्णिति" (अष्टा० ७/२/११५) इस सूत्र से 'आ' वृद्धि और 'रपर' होकर 'आर् य' बना । पूर्ववत् प्रातिपदिक संज्ञादि होकर **'आर्यः'** बना ।

"आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः" (अष्टा० ६/२/५८) सूत्र तथा अन्य कई स्थानों में 'आर्य' शब्द का उल्लेख है । ब्राह्मण तथा कुमार शब्द उत्तरपद रहते कर्मधारय समास में पूर्वपद स्थित (आर्यः) आर्य शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है ।

श्री यास्काचार्य की निरुक्तिः—

"यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुष्याय दस्रा ।
अभिदस्युं बकुरेणा धमन्तोरू ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥"
—[ऋ० १/११७/२१]

इस मंत्र में आये 'आर्य' शब्द का अर्थ यास्काचार्य जी करते हैं—

"..........आर्य ईश्वरपुत्रः" ।

पं० चन्द्रमणि जी 'विद्यालङ्कार', पालीरत्नः—आर्यः="ईश्वरपुत्रः' अरिः ईश्वरस्तस्यापत्यम् आर्यः ।[1]

पं० भगवद्दत जी बी० ए०—"आर्य का अर्थ है' ईश्वर का पुत्र ।"[2]

श्रीनगेन्द्र नाथ वसु 'प्राच्य विद्यामहार्णव', सिद्धान्तवारिधि, एम. आर. ए. एस.="ईश्वर के पुत्र का नाम आर्य है ।"[3]

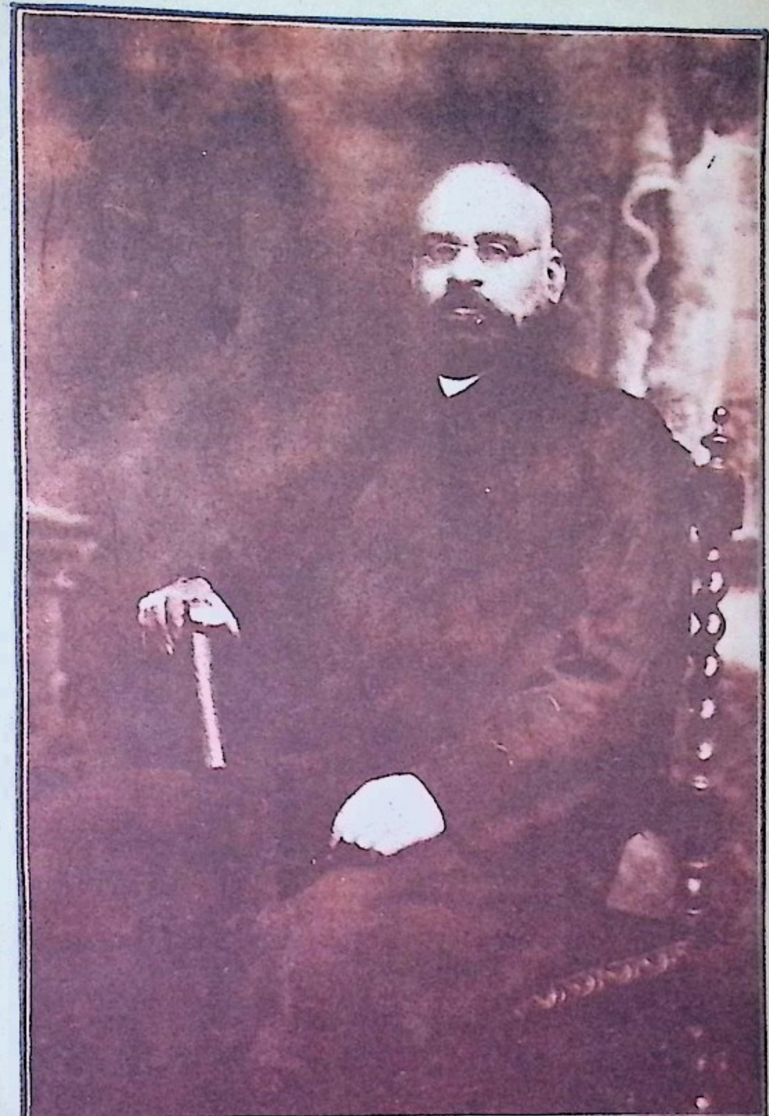
महामहोपाध्याय श्रीछज्जूराम शास्त्री, विद्यासार, विद्यावागीश पं० देव शर्मा शास्त्री तथा आचार्य श्री भगीरथ शास्त्री—"आर्याय ईश्वर-पुत्राय आर्य अर्थात् ईश्वर का जो पुत्र है, ईश्वर की आज्ञा-वेदानुकूल आचरण करने वाले के लिए ।"[4]

इन विद्वानों ने स्पष्टीकरण कर दिया कि 'वेदानुकूल आचरण करने वाले ही ईश्वर पुत्र हैं ।' इससे मुसलमान व ईसाई इस कोटि में नहीं आ सकते हैं, क्योंकि वे वेदानुकूल आचरण नहीं करते हैं ।

ऋ० १/११७/२१ के **भाष्य में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती** लिखते हैं—

---

१. "वेदार्थ दीपक निरुक्त भाष्य" पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ४३८,
२. "निरुक्त शास्त्रम् भाषाभाष्य" प्रथम संस्करण पृष्ठ ३६८ [संवत् २०२१ वि० श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर]
३. "सचित्र हिन्दी विश्वकोष" द्वितीय भाग, पृष्ठ ६७३ [सन् १९१५ ई. कलकत्ता संस्करण],
४. "निरुक्त "व्याख्या, पृष्ठ ३०७ [सन् १९६३ ई० सर्वश्री मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास, संस्कृत पुस्तकालय, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता २७३६ कूचा चेलां, दरियागंज दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण],



श्री शाम जी कृष्ण वर्मा

"...(आर्य्याय) आर्य्यस्येश्वरस्य पुत्रवद्वर्त्तमानाया...।"

=ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्तमान धार्मिक मनुष्य के लिए।"[1]

अपने भाष्य की पुष्टि में उन्होंने निरुक्त ६/२६ का प्रमाण उद्धृत किया है। निघण्टु (२/२२) में ईश्वर नाम पर 'अर्य' शब्द परिपठित है। उसी से अपत्यार्थ में 'आर्य' शब्द बनता है।

पाश्चात्य पण्डितों द्वारा 'आर्य' शब्द का विचित्र अर्थ और उसकी आलोचना

"पाश्चात्य पण्डित 'अर्' धातु से 'अर्य' शब्द बनाते हैं। 'अर्' धातु का अर्थ भूमिकर्षण है। लेटिन, ग्रीक (यूनानी), ऐंग्लो-सेक्सन, अंग्रेजी, रूसी, आयरिश, कर्णिश, वेल्सी, प्राचीन नर्स, लिथुयेनिक प्रभृति अनेक यूरोपीय भाषा में हल व कृषि वाचक शब्द इसी 'अर्' धातु से निकलते हैं। उनके मतानुसार कृषि कार्य करने से ही इस जाति का नाम 'आर्य' पड़ा है। उक्त यूरोपीय जाति भी आर्य वंश से समुद्भूत हैं रेवरेण्ड कृष्ण मोहन बन्द्योपाध्याय के मत से उसीरिया की शिल्प लिपि 'अरि' शब्द हलवाचक ठहरता, जो आर्य का प्रतिरूप हो सकता है। अतएव पाश्चात्य पण्डितों के मत से आर्य नाम को प्राचीन कृषक जाति का द्योतक मानना पड़ता है।

आलोचना—"क्या आर्य कृषक थे? प्राचीन जाति के मध्य कृषिकार्य प्रधान जीवनोपाय रहने से क्या आर्य शब्द कृषि पद वाच्य हो सकता है? वैदिक और लौकिक उभयविध प्रयोग में आर्य शब्द शत-शत बार आया है। किन्तु आर्य शब्द अथवा इसके मूल धातु ऋ से कहीं भूमिकर्षण का अर्थ नहीं निकलता। जहाँ आर्य शब्द पड़ा, वहीं, 'श्रेष्ठ' और 'विज्ञ' प्रभृति अर्थ से जुड़ा है। इसीसे सायण का 'अरणीय' अर्थ ही 'आर्य' शब्द का मूल अर्थ है। हम समझते हैं, कि वैदिक समय में इस जाति के लोग नाना स्थानों में जाकर रहते थे। इसी से आर्य नाम निकाला होगा।

पारसियों के अवस्ता नामक प्राचीन धर्मशास्त्र में 'ऐर्य' शब्द 'श्रद्धास्पद' और 'साधारण' दोनों अर्थ पर लगा है। कावशजी एदले जी कांगे ने 'बन्दीदाद' का अनुवाद जो गुजराती में किया, उसके शेष अभिधान में 'ऐर्य' शब्द का प्रकृत अर्थ 'अर्य' और 'आर्य, लिया है। अरमनी भाषा में 'अरि' ईरानी और साहसिक को कहते हैं। अतएव वेद व्यतीत एशियाखण्ड को अपर भाषाओं में भी जब विकृताकार प्राप्त आर्य शब्द का अर्थ हल वा भूमिकर्षण लगना कठिन पड़ता, तब समझ पर नहीं चढ़ता, पाश्चात्य पण्डितों द्वारा कथित आर्य शब्द के मूल अथवा 'अर्' धातु के अर्थ से कहाँ तक हल अथवा भूमिकर्षण का भाव कढ़ता है।

सायणाचार्य ने 'ऋग्भाष्य' में आर्य शब्द का अर्थ नाना प्रकार लगाया है—'(१) विदुषोऽनुष्ठावीन् (१/५१/८), (२) विद्वांसस्तोतारः, (३) विदुषे (१/११७/-२१) (४) अरणीयं सर्वगन्तव्य (१/१३०/८); (५) उत्तम वर्ण त्रैवर्जिकम् (३/३४/-८); (६) मनवे (४/२६/२); (७) कर्मयुक्तानि (६/२२/१०), (८) कर्मानुष्ठातृत्वेन श्रेष्ठानि (६/३३/१०)'

अर्थात्-१. विज्ञ यज्ञानुष्ठाता, २. विज्ञ स्तोता, ३. विज्ञ, ४. अरणीय वा

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम् "द्वितीयभागात्मकम्" पृष्ठ ५५८ [संवत् २०१६ वि. अजमेर तृतीयावृत्ति]

सर्वगन्तव्य, ५. उत्तम वर्ण त्रैवर्णिक, ६. मनु, ७. कर्मयुक्त, और ८. कर्मानुष्ठान से श्रेष्ठ।

....

इस प्रकार 'आर्य' शब्द से मानव जाति का भाव निकलता है।

............[1]

अमरहुतात्मा, धर्मवीर पं० लेखराम जी 'आर्य पथिक' की आलोचना—

"खेद का स्थान है कि जिनको मस्दर या धातु का ज्ञान नहीं वह भी आक्षेप करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। हजरत, 'आर' धातु नहीं किन्तु 'ऋ' है जिससे संस्कृत में 'आर्य्य' और 'अर्य्य' नाम बने हैं। और इसी से फारसी, पहलवी में ईरानी बना है परन्तु आर्य्य व अर्य्य भी एक नहीं वह और रीतियों से बना है और यह और से पहला समस्त जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का नाम है और दूसरा केवल वैश्य का जैसा वैश्यों के कर्म वर्णन में मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ९० में—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक् पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना, सात काम लिखे हैं। और पंजाबी मसल हैं—उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, निषिद्ध चाकरी, भीख गमार। आर्य के अर्थ संस्कृत के अनुसार महान् श्रेष्ठ, विद्वान्, धार्मिक व ईश्वरभक्त के हैं और ऐसा ही कथन मैक्समूलर साहब का भी है (देखो 'सायन्स ऑव दी लैंग्वेज' पृष्ठ २७५) आर्य के अर्थ 'महान् विद्वान्, देवता और सभ्य व शीलवान् देवताओं की प्रतिष्ठा करने वाला है क्योंकि यह शब्द दस्युओं के विरुद्ध है।

और समस्त आर्य कभी खेती नहीं करते थे किन्तु आदि ही से वह चार भागों में विभाजित हैं जिसकी आज्ञा पवित्र वेद में भी है। मानों वही शिक्षा इसकी जड़ है अर्थात् विद्या का पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना-लेना जो मुख्य कर्म हैं उनका करने वाला ब्राह्मण। विद्या का पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना देश व जाति की रक्षा करना जो शारीरिक बल सम्बन्धी हों इनका कर्त्ता क्षत्रिय और उपर्युक्त लेखानुसार देशाटन करके व्यापार करने हारा वैश्य। और महामूर्ख सेवक का नाम शूद्र है। परन्तु सदा आर्य्य जाति में से वैश्य कृषि करने हारे रहे या खेती करने हारा वैश्य नाम से प्रसिद्ध रहा, पर समस्त मनुष्यों का कार्य प्राकृतिक नियमानुसर खेती ही करना नहीं है नहीं तो विद्या, शूरता, रक्षा, देश की सेवा, परोपकार कौन करे। और इसी प्रकार ईरानी जाति भी विभक्त है।.........[2]"

कोषकारों के मत में आर्य शब्द

(क) श्री अमर सिंह ने **"अमरकोष"** काण्ड २, श्लोक ३ में लिखा है—

---

१. "सचित्र हिन्दी विश्व कोष" द्वितीय भाग, पृष्ठ ६७१-६७२।

२. "आर्य हिन्दू और नमस्ते का अनुसंधान" पृष्ठ ८-९ [सन् १९२९ ई० वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति]

"महाकुलकुलीनार्य सभ्यसज्जनसाधवः ।"

अर्थात्—महाकुल, कुलीन, आर्य्य, सभ्य, सज्जन और साधु शब्द समानार्थ वाची हैं ।

(ख) **पं० वामन शिवराम आप्टे** अपने "संस्कृत-हिन्दीकोष"[1] में लिखते हैं—आर्य (वि०) [ऋ+ण्यत्] १. आर्यन, या अर्य के योग्य, २. योग्य, आदरणीय सम्माननीय, कुलीन, उच्च पदस्थ—यदार्यमस्यामभिलापि मे मनः-श० १/२२,...... ४. सम्माननीय या आदरणीय पुरुष प्रतिष्ठित व्यक्ति, ५. सत्कुलोत्पन्न पुरुष ६. सच्चरित्र पुरुष .... ।"

(ग) **पं० रामस्वरूप शास्त्री, एम० ए०** (संस्कृत, हिन्दी), **एम० ओ० एल.**, विद्यावाचस्पति, प्रोफेसर, हंसराज कालेज दिल्ली अपने कोष[2] में लिखते हैं—"आर्य, वि. (सं) श्रेष्ठ, भद्र, २. मान्य, पूज्य, ३. कुलीन समाज पुँ (सं) महर्षि दयानन्द संस्थापित समाज विशेष ।"

(घ) 'शब्दकल्पद्रुम, अद्भुतकोष, रामकोष, मेरुतन्त्र, मेदिनीकोष में **'हिन्दु'** शब्द देख कर पौराणिक पण्डित यह कहते हैं कि 'हिन्दु' शब्द पुराना है जिसका अर्थ होता है—'जो हिंसा को दूषित करता है; दुष्टों को दण्ड देने वाला'......आदि ।

आलोचना—जिन कोषों में 'हिन्दू' शब्द की चर्चा है वे सब आधुनिक हैं । वे सभी कोष मुसलमानों के आर्यावर्त में आने के बाद बने हुए हैं । मुसलमानों के पूर्व के किसी भी ग्रन्थ में 'हिन्दू' शब्द नहीं मिलता । शब्दकल्पद्रुम, अद्भुतकोष, रामकोष को बने हुए तो सौ वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए होंगे । मेरुतंत्र दो-तीन सौ वर्ष प्राचीन है किन्तु वह भी मुसलमानी काल का है । अतः 'हिन्दू' शब्द अत्यन्त अर्वाचीन है । किसी भी पुराण व तान्त्रिक ग्रन्थ यहाँ तक कि तुलसीकृत 'रामचरितमानस' तक में भी 'हिन्दू' शब्द नहीं है ।

बंगाल के विख्यात पौराणिक पण्डित महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के कट्टर विरोधी **पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति** ने "वाचस्पत्याभिधानकोष" बनाया है, जो 'शब्दकल्पद्रुम' से कई गुणा बड़ा है । उसमें उन्होंने 'हिन्दू' पद पर 'शब्दकल्पद्रुम'

हिन्दूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः ।"
हीनं च दूषयन्त्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये ॥
पूर्वाम्नाये नवशतं षड्शीतिः प्रकीर्तिताः ।
फिरङ्गिभाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनात् कलौ ॥
अधियामण्डलानाञ्च संग्रामेस्वपराजितः ।
इंग्रेजा नवषट्पञ्च लण्ड्रजाश्चापि भाविनः ॥

(मेरुतंत्र प्र० २३)

वाला अर्थ उद्धृत कर जब विचार किया कि ये श्लोक उस समय के बने हैं जबकि

---

१. "संस्कृत-हिन्दी कोश" पृष्ठ १५९ [सन् १९६६ ई० मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित]

२. "आदर्श हिन्दी-संस्कृत-कोश" पृष्ठ ५१ [१८५७ ई० में चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित]

लन्दन निवासी युद्धवीर अंग्रेज जाति भारत आ चुकी थी, तब निरुपाय होकर कोषकार तर्कवाचस्पति जी ने इन श्लोकों के बाद ही "अप्रमाणमिदम्" (यह प्रमाण नहीं है) लिख दिया है।

अतः इस प्रमाण से आधुनिक संस्कृत कोषों में जो 'हिन्दू' शब्द आया है वह नितान्त आधुनिक है। दूसरे बंगाली विद्वान् श्री नगेन्द्र वसु 'प्राच्यविद्यामहार्णव' अपने **"हिन्दीविश्वकोष"** में 'हिन्दू' शब्द पर लिखते हैं—

"मेरुतन्त्र के २३वें पटल में कुछ श्लोकों में हिन्दू शब्द का उल्लेख है। ये सब श्लोक उतने पुराने नहीं जितने समझे जाते हैं। इन श्लोकों में अंग्रेज जाति, लण्डन नगर, इत्यादि का उल्लेख है और यह भी लिखा है कि शाह लोग हिन्दू धर्म्म को विलोप करने वाले हैं।......मुसलमानी अमल के पहले कोई भी भारतवासी 'हिन्दू' कह कर अपना परिचय नहीं देता था। इसी से किसी प्राचीन संस्कृत या प्राकृत ग्रन्थ में 'हिन्दू' शब्द का उल्लेख नहीं है।......इसी समय शायद 'मेरुतंत्र में सर्वप्रथम 'हिन्दू' शब्द का व्यवहार हुआ।'

(ङ) **"वाचस्पत्याभिधानकोष"** में 'आर्य' शब्द का अर्थ लिखा है—

"आर्य—पु०—ऋ—ण्यत्। १. स्वामिन्, २. गुरौ, ३ सुहृदि च, ४. श्रेष्ठकुलोत्पन्ने, ५. पूज्ये, ६. श्रेष्ठे, ७. मान्ये, ८. उदारचरिते, ९. शान्तचित्ते।"

(च) **"शब्दकल्पद्रुम"** में आर्य के अर्थ—

"मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः, न्यायपथावलम्बी, प्रकृताचारशीलः, सततकर्त्तव्यकर्मानुष्ठाता। यदुक्तम् कर्त्तव्यमाचरन् कार्यम् अकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे मनु आर्य इति स्मृतः। धार्मिकः धर्मशीलः। यथाह मनु आर्य रूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विवस्येत ॥ १०/५७ ॥"

मान्यः—जो अपने उत्तम गुणों के कारण सम्मान के योग्य हो।

उदारचरितः—जिसका चरित्र उदार हो, जिसके व्यवहार में उदारता पाई जाय।

शान्तचित्तः—जिसका चित्त शान्त हो।

न्यायपथावलम्बीः—जो सदा न्याय के पथ पर चलने वाला हो। जो कभी भूल कर भी अन्याय पथ का अवलम्बन न करे।

प्रकृताचारशीलः—जिसका आचार और स्वभाव शास्त्रीय आदेशों के अनुसार हो।

सतत कर्त्तव्य कर्मानुष्ठाताः—जो करने योग्य कार्यों को निरन्तर करने वाला हो। जो व्यक्ति उत्तम कार्यों को करने वाला हो और अकर्त्तव्य कर्मों का आचरण न करने वाला हो ऐसा स्मृतियों में कहा है। धार्मिक, धर्मशील।

(छ) **"शब्दरत्नावलि"** नामक संस्कृत कोष में लिखा है—

"आर्यः—अर्तुं प्रकृतमाचरितुं योग्यः।"

शास्त्रोक्त पथ पर चलने वाला पूज्य, श्रेष्ठ 'आर्य' कहलाता है।

(ज) **श्री नगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव, तत्त्व-चिन्तामणि, शब्द-रत्नाकर** अपने "हिन्दी विश्वकोष" द्वितीय भाग, पृष्ठ ६७१ में लिखते हैं—"आर्य (सं.

पु०) आर्यते गम्यते पूजा, ऋ—ण्यत् । १. महाकुल, कुलीन सभ्य, सज्जन, साधु, फरमांबरदार या वफ़ादार शख्स । महाकुल-कुलीनार्थ सभ्यसज्जन साधवः, (अमर), २. पूज्य, श्रेष्ठ, सङ्गत, नाट्योक्ति में मान्य, उदारचरित, शान्तचित्त, इज्जतदार शख्स । ३. स्वामी, हक़दार, वारिस । ४. मित्र, यार,.........
"वेदोक्त प्राचीन जाति विशेष ।" ......

(झ) "श्रीधर भाषाकोष" में "आर्य" शब्द के बड़ा, श्रेष्ठ, कुलीन, अच्छे घराने का, पूज्य, पूजनीय और महाराज प्रभृति अर्थ किये गए हैं ।

(ञ) श्री रामचन्द्र वर्मा "संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर"[1] में लिखते हैं :—"आर्य-वि० [सं.] [स्त्री० आर्य्या] १. श्रेष्ठ । उत्तम । २. बड़ा । पूज्य । ३. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न । मान्य । संज्ञा पु० [सं.] १. श्रेष्ठ पुरुष । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न । २. मनुष्यों की एक जाति जिसने संसार में बहुत पहले सभ्यता प्राप्त की थी ।"

(ट) चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा एम० आर० ए० एस० तथा पं० तारिणीश झा, व्याकरणवेदान्ताचार्य अपने "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ"* में लिखते हैं :—
"आर्य—(वि०) [√ऋ+ण्यत्] आर्य के योग्य । प्रतिष्ठित । उत्तम । समीचीन । सर्वोत्कृष्टः ।........."

इन्होंने हिन्दू "शब्द का अर्थ करते हुए 'मेरुतंत्र' का प्रमाण दिया है जिसकी आलोचना पीछे की जा चुकी है ।

आर्षप्रमाण :—

(१) "वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो......" [ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ५१ मंत्र ८]
महर्षि दयानन्द जी सरस्वती :—"(आर्य्यान्) धार्मिकानाप्तान्विदुषः सर्वोपकारकान्मनुष्यान्"=सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को ।"[2]
"वे ही आर्य हैं कि जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सब के उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिए निरन्तर यत्न करते हैं ।"[3]

(२) "...वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय"—[ऋ० १।५९।२]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—'(आर्याय) उत्तम गुण स्वभावाय'=उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले मनुष्य के लिए ।"[4]

---

१. " संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर अर्थात् हिन्दी शब्द-सागर का संक्षिप्त संस्करण पृष्ठ ११८ [संवत् २००२ वि., काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण].

* सन् १९७३ ई. में सर्वश्री रामनारायणलाल वेणी प्रसाद, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १९९.

२. "ऋग्वेद भाष्य" प्रथम भागात्मकम्" तृतीयावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ ७११.

३. वही, पृष्ठ ६११-७१२.

४. वही, पृष्ठ ८०१

(३) "…दस्यवे हेतिमस्यार्यम्" [ऋ० १।१०३।३]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—" (आर्य्यम्) आर्य्याणामर्याणां वा इदम्"= श्रेष्ठ वा अति श्रेष्ठों के सदृश।"[1]

(४) "इन्द्रः समत्सु यजमानमार्य्यम्" [ऋ० १।१३०।८].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—"(आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावम्'=उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष के।"[2]

(५) "आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत्।"—[ऋ० १।१५६।५].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—"(आर्यम्) सकल शुभगुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानम्= समस्त शुभ गुण कर्म और स्वभावों में वर्त्तमान।"[3]

(६) "अपा वृणु ज्योतिरार्याय" [ऋ० २।११।१८].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—"(आर्य्याय) उत्तमाय जनाय"—उत्तम के लिए साधारण होओ। "[4]

(७) "विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्"—[ऋ० २।११।१९]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—"(आर्येण) उत्तम विद्याधर्मसामर्थ्येन"= "उत्तम विद्या और धर्म स्वभावयुक्त सामर्थ्य के साथ।"[5]

(८) "दस्यून्प्रार्यवर्णमावत्"—[ऋ० ३।३४।९]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—"(आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावं धार्मिकम्"= "उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त धार्मिक"।[6]

(९) "अह भूमिमददामार्यायाहं"—[ऋ० ४।२६।२].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—"(आर्य्याय) धर्म्मगुणकर्मस्वभावाय"= "धर्म्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभाव वाले के लिए।"[7]

(१०) "उत त्यासद्य आर्य्या"—[ऋ० ४।३०।१८]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—(आर्या) उत्तमगुणकर्म्मस्वभावौ"="उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वालों।"[8]

---

१. वही, द्वितीय भागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ३७२-३७३.

२. वही, तृतीयभागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर), पृष्ठ ९७.

३. वही, पृष्ठ २७८.
क्षत्रिय व वैश्य वर्ण आर्य राजा।"

४. वही, चतुर्थ भागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ९२.

५. वही, पृष्ठ ९३.

६. वही, पञ्चमभागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ३०५-३०७.

७. वही, षष्ठभागात्मकम्, पृष्ठ ३३०-३३१ [संवत् १९८३ वि० वैदिक यन्त्रालय, अजमेर].

८. वही, पृष्ठ ३६९.

(११) **"यथावशं नयति दासमार्य्यः—"** [ऋ० ५।३४।६]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्यः)ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णाः" = "ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य वर्ण आर्य राजा।"[1]

(१२) **"दस्यूंरेकः कृष्टीरवनोरार्य्याय ।"**—[ऋ० ६।१८।३]
महर्षि दयानन्द—'द्विज के लिए।"[2]

(१३) **"यमा** दासान्यार्याणि"—[ऋ० ६।२२।१०]
महर्षि दयानन्दजी—(आर्यापि) द्विजकुलानि—"द्विज कुल और।"[3]

(१४) **"अभियुजोविषूचीरार्याय"**—[ऋ० ६।२५।८]
महर्षि दयानन्दजी—"(आर्याय) उत्तमा यजनाय"—"उत्तमजन के लिए।"[4]

(१५) **"वृताण्यार्या च भूरः"**—[ऋ० ६।३३।३]
महर्षि दयानन्द जी—"(आर्या) धार्मिष्ठानुत्तमान् जनान्"—"धर्मिष्ठ उत्तम जनों को।"[5]

(१६) **"हतो वृत्राण्यार्या"**—[ऋ० ६।६०।६]
महर्षि दयानन्द जी—"(आर्या) उत्तमगुणकर्मस्वभावौ"—"उत्तम गुण कर्म-स्वभाव युक्त।"[6]

(१७) **"उरुज्योतिर्जनयन्नार्याय"**—[ऋ० ७।५।६],
महर्षि दयानन्द जी—(आर्याय)सज्जनाय मनुष्याय = सज्जन मनुष्य के लिए।"[7]

(१८) **"सधमा आर्यस्य गव्या"**—[ऋ० ७।१८।७]
महर्षि दयानन्दजी—"(आर्य्यस्य) उत्तमजनस्य" = 'उत्तम जन के'।[8]

(१९) "प्रजा आर्या ज्योतिरग्र :"—[ऋ० ७।३३।७]
महर्षि दयानन्द जीः—"(आर्याः) उत्तमगुणकर्मस्वभावाः = "उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष।"[9]

---

१. वही, सप्तम भागात्मकम्, द्वितीयावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ २८७-२८८
२. वही अष्टमभागात्मकम्, पृष्ठ २१२-२१३ [संवत् १९८३ वि. वैदिक यंत्रालय, अजमेर]
३. वही, पृष्ठ २८१
४. वही, पृष्ठ ३०८-३०९
५. वही, पृष्ठ ३७५-३७६
६. वही पृष्ठ ६९७
७. वही, नवम् भागात्मकम् पृष्ठ ७१ [संवत् १९८९ अजमेर, वैदिक यंत्रालय]
८. वही, पृष्ठ १७४-१७५
९. वही, पृष्ठ ३४६

(२०) "वृत्रा हतमार्याणि च" [ऋ० ७।८३।१]
इस पर महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य नहीं है।

(२१) "यस्यायं विश्व आर्यो दासः—" [ऋ०८।५१।९]

(२२) "उपोषु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं—" [ऋ०८।१०३।१]

(२३) कृण्वन्तो विश्वमार्यम्—"[ऋ० ९।६३।५]
="विश्व को आर्य बनाओ। ग्रिफिथ का अनुवाद Performing every noble work" और लुडविग आर्य का अर्थ 'Venerable'— "आदरणीय, पूज्य" करते हैं।
महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि जी—'(आर्यम्)' 'आर्यत्व"=आर्यत्व।[1]

(२४) "एते धामान्यार्या शुक्रा—" [ऋ०९।६३।१४]
पं० आर्यमुनि जी—"(आर्या) आर्यपुरुषाणां="आर्यपुरुषों के'।[2]

(२५) "वृणते दस्ममार्या"—[ऋ०१०।११।४]

(२६) "यो नो दास आर्यो वा" [ऋ०१०।३८।३]

(२७) मनवे ज्योतिरार्यम्" [ऋ०१०।४३।४]

(२८) "यो रर आर्यं नाम दस्यवे—" [ऋ०१००।४९।३]

(२९) "सुदानव आर्यव्रता—" [ऋ०१०।६५।११]

(२९) "वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ"—[ऋ०१०।६७।६]

(३०) "साह्याम दासमार्यम्—"[ऋ०१०।८३।१]

(३१) "चिन्वन्दासमार्यम्"—[ऋ०१०।८६।१७]

(३२) "दासस्य वा मघवन्नार्यस्य" [ऋ०१०।१०२।३]

(३३) "विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः— [ऋ०१०।१३८।३]
'आर्यान्' की व्याख्या सायण ने "विदुषः' स्कन्दस्वामी ने "साधुवृत्तान् यागपरान्" तथा विलसन और ग्रिफिथ ने "आर्य" शब्द से ही की है। इसके श्री सायणाचार्य ने "आर्य" के विद्वान् यजमान, सब के द्वारा गमनीय, कर्मशील उत्तम वर्ण, भद्र और श्रेष्ठ आदि अर्थ किये हैं।

(३४) "शूद्रार्यावसृज्येता···" [यजु०१४।३०]
महर्षि दयानन्दजी—"(शूद्रार्यौ) शूद्रश्चार्य्यो द्विजश्च तौ"="शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों।"[3]

---

१. "नवममण्डलस्य ऋग्वेदभाष्यम्" तृतीय खण्डात्मकम्, पृष्ठ ४०० [संवत् १७६ वि. चन्द्रप्रभा यन्त्रालय, वारणसी में मुद्रित व प्रकाशित]

२. वही, पृष्ठ ४०७.

३. "यजुर्वेद-भाष्यम्" द्वितीयो भागः, पृष्ठ ४७३-४७४ [पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु विरचित विवरण सहित, भाद्रपद २०२८ वि. श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़]

(३५) "साह्याम दासमार्यम्" [अथर्ववेद काण्ड, सूक्त ३२, मंत्र १]
पं० क्षेमकरणदास जी 'त्रिवेदी':— "(आर्यम्) अ०४।२०।४। श्रेष्ठं । विद्वांसम् ।"[1]
"(आर्यम्) आर्य अर्थात् विद्वान् का ।"[2]

(३६) "न मे दासो नार्यो महित्वा—" [अथर्व काण्ड ५, सूक्त ११ मंत्र ३]
पं० क्षेमकरणदास 'त्रिवेदी':—"(न आर्यः) अनार्य, अविद्वान् ।"[3]
इसके विपरीत 'आर्य' का अर्थ 'विद्वान्' हुआ ।

(३७) "सवितेव चार्य इमा विशो"... [अथर्व० का० १७ सूक्त ४५, मंत्र ४]
पं० क्षेमकरणदास 'त्रिवेदी':—"(आर्यः) श्रेष्ठस्त्वम् = श्रेष्ठ तू ।"[4]
राजर्षि मनु जी और 'आर्य' शब्दः—

(३८) "आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।"

—[मनुस्मृति २/२२]

प्रसिद्ध भाष्यकार पं० कुल्लूकभट्टः— "...आर्या अत्रावर्तन्ते पुनः पुनरुद्भवन्तीत्यार्यावर्तः ।"

अर्थात्, "जिस देश में आर्य लोग बारम्बार उत्पन्न हों उस देश को 'आर्यावर्त्त' कहते हैं।

(३९) "सत्यधर्मार्य वृत्तेषुशौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ।।"

—[मनु० ४/१७५]

अर्थ—"गुरु को उचित है कि अपने शिष्यों को धर्मपूर्वक शिक्षा देवे और वचन, बाहु तथा उदर को संयत बनाते हुए सत्य धर्मादि आर्यवृत्ति से पवित्रता के पालन करने में सदा तत्पर रहे ।"

(४०) "साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रवन्नार्यसंसदि ।
अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ।"

—[मनु० ८/७५]

अर्थ—"आर्यों की सभा में देखे-सुने से विरुद्ध कहने वाला साक्षी अधोमुख दुर्गति को प्राप्त होता है और मर कर भी सुख से वंचित रहता है ।"

(४१) "वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ।।"

—[मनु० १०/५७]

---

१. "अथर्ववेदभाष्यम्", चतुर्थं काण्डम्, प्रथमावृत्तौ (प्रयाग), पृष्ठ ८५२ की पाद-टिप्पणी
२. वही, पृष्ठ ८५१.
३. वही, पञ्चमं काण्डम् प्रथमावृत्तौ (प्रयाग) पृष्ठ ९९१,
४. वही, एकोनविंशं काण्डम्, प्रथमावृत्तौ (प्रयाग) पृष्ठ ३७७५

अर्थ—"वर्णभ्रष्ट (हीन वर्ण वाले), अप्रसिद्ध, नीच जाति से उत्पन्न, देखने में आर्य (सज्जन) परन्तु यथार्थ में अनार्य अधर्म पुरुष के उसके कर्मों से जानना चाहिए।"

(४२) जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद् गुणैः।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः॥ ॥ मनु० १०/६७॥

अर्थः—"अनार्या स्त्री में आर्य से उत्पन्न हुआ गुणों से आर्य्य (श्रेष्ठ) हो सकता है और शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र गुणहीन होने से श्रेष्ठ नहीं है, ऐसा (शास्त्र का)निश्चय है।"

(४३) "सुवीजं चैव सुक्षेत्रे जातं सम्पद्यते यथा।
तथार्य्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति॥"

—[मनु० १०/६९]

अर्थ—"जिस प्रकार उत्तम खेत में बोया हुआ अच्छा बीज समृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार आर्या स्त्री में आर्य (द्विज) से उत्पन्न हुआ बालक सम्पूर्ण संस्कारों के योग्य होता है।"

(४४) "अनार्यमार्यकर्म्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम्
सम्प्रधार्याब्रवीद्धातानसमौ नासमाविति॥"

—[मनु० ६०/७३]

अर्थ—"आर्यों के कर्म करने वाले अनार्यों को और अनार्यों के कर्म करने वाले आर्यों को ब्रह्मा ने विचार कर यह कहा कि ये दोनों परस्पर न तो सम हैं न तो असम अर्थात् केवल कर्म से इनकी वर्ण व्यवस्था नहीं की जा सकती, किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव सब पर दृष्टि डालकर व्यवस्थापक विद्वान् वा समिति को व्यवस्था देनी चाहिए।

श्री मेधातिथि कहते हैं कि यहाँ तक वर्णसङ्कटों की निन्दा और कर्मों की प्रशंसा रूप अर्थवाद ही है विधि का निषेध कुछ नहीं।

वेदव्यासजी और 'आर्य' शब्द—

(४५) "आर्या युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे"

—[महाभारत, द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्व, अ० १२४ श्लो० २१]

पं० रामनारायणदत्त जी शास्त्री पाण्डेय 'राम'—अतः वे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धि का आश्रय ले वहाँ युद्ध के लिए ही डटे रहे।"[1]

यहाँ शास्त्रीजी ने 'आर्य' का 'श्रेष्ठ' किया है।

(४६) "आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनंजय।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुस्करतमं भुवि॥

—महाभारत, द्रोणापर्वणि जयद्रथवधपर्व अ० १४३ श्लो० १०]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"धनंजय! श्रेष्ठ पुरुष के लिए श्रेष्ठ कर्म ही

१. "महाभारत (चतुर्थखण्ड) सचित्र, सरल हिन्दी अनुवाद सहित, तृतीय संस्करण (गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ ३४४२.

सुकर बताया गया है। नीच कर्म का आचरण तो इस पृथ्वी पर उसके लिए अत्यन्त दुष्कर माना गया है।"[1]

(४७) "कच्चिदार्यो विशुद्धात्मा क्षारितश्चौरकर्मणि।"

—[महाभारत, सभापर्वणि, लोकपाल सभाख्यानपर्व, अ० ५ श्लोक १०५]

पं० रामनारायणदत्त जी शास्त्री—"कहीं ऐसा तो नहीं होता कि शास्त्र कुशल विद्वानों का संग न करने वाले तुम्हारे मूर्ख मंत्रियों ने किसी विशुद्ध हृदय वाले श्रेष्ठ एवं पवित्र पुरुष पर चोरी का अपराध लगाकर उसका सारा धन हड़प लिया हो?"[2]

(४८) "आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत्।"

—[महाभारत, कर्ण पर्व, अ० ४४, श्लो० ४०]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"वे आरट्ट नाम से प्रसिद्ध वाहीक प्रदेश हैं। उनमें श्रेष्ठ पुरुष दो दिन भी निवास न करे।"[3]

(४९) "स बाल एवार्यमतिर्नृपोत्तमः।"

—[महाभारत, आदिपर्वणि आष्तीकपर्व, अ० ४४ श्लो० ७]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"बचपन में ही नृप श्रेष्ठ जनमेजय की बुद्धि श्रेष्ठ पुरुषों समान थी।"[4]

(५०) "यः स्याद्दान्त सोमपश्चार्यशीलः
सानुक्रोशः सर्वसहो निराशीः।
ऋजुर्मृदुरनृशंसः क्षमावान्
स वै विप्रो नेतरः पापकर्मा।"

—[महाभारत, शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्व अध्याय ६३ श्लोक ८]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—जो मन और इन्द्रियों को संयम में रखने वाला सोमयाग करके सोमरस पीनेवाला, सदाचारी, दयालु, सब कुछ सहन करने वाला, निष्काम, सरल, मृदु, क्रूरता रहित और क्षमाशील हो, वही ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं। उससे भिन्न जो पापाचारी है, उसे ब्राह्मण नहीं समझना चाहिए।"[5]

(५१) "अल्पाश्रयानल्पफलान् वदन्ति
धर्मानन्यान् धर्मविदो मनुष्याः।
महाश्रयं बहुकल्याणरूपं
क्षात्रं धर्मं नेतरं प्राहुरार्याः।"

—[महाभारत, शान्ति पर्वणि राजधर्मानुशासनपर्व अ० ६३ श्लो० २६]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"धर्म के ज्ञाता आर्य पुरुषों का कथन है कि अन्य समस्त धर्मों का आश्रय तो अल्प ही, फल भी अल्प ही है। परन्तु क्षात्रधर्म

---

१. वही, पृष्ठ ३५०६.
२. महाभारत (प्रथम खण्ड), तृतीय संस्करण, पृष्ठ ६८३,
३. महाभारत, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३८९५.
४. वही, प्रथम खण्ड, पृष्ठ, १३२.
५. वही, पञ्चम खण्ड, पृष्ठ ४५८५

का आश्रय भी महान् है और उसके फल भी बहुसंख्यक एवं परमकल्याण रूप हैं। अतः इसके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।"[1]

(५२) "आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ।"
—[महाभारत, उद्योगपर्वणि, प्रजागर पर्व, अ० ३३, श्लो० २५]

पं० **रामनारायणदत्त शास्त्री**—"भरतकुलभूषण! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मों में रुचि रखते हैं। उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करने वालों में दोष नहीं निकलते।"[2]

यही 'प्रजागर पर्व' 'विदुरनीति' के नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेदभाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी—"श्रेष्ठ कर्मों में जो प्रीति करते हैं, जिनसे उन्नति हो ऐसे कार्यों को करते हैं और किसी के हित की निन्दा नहीं करते हे धृतराष्ट्र! वही पण्डित हैं।"[3]

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—"हे भरतकुल में श्रेष्ठ (धृतराष्ट्र) जो व्यक्ति आर्यों (शिष्यों) के कर्मों में अनुराग रखते हैं। ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले कर्मों को ही करते हैं और कल्याणकारक की कभी असूया (निन्दा) नहीं करते वे ही पण्डित कहे जाते हैं।"[4]

(५३) "न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥"
—[महाभारत, उद्योगपर्वणि, प्रजागर पर्व, अ० ३३, श्लो० ११२]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"जो शान्त हुई वैर की आग को फिर प्रज्वलित नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा 'मैं विपत्ति में पड़ा हूँ' ऐसा सोच कर अनुचित काम नहीं करता, उस **उत्तम** आचरण वाले पुरुष को **आर्यजन** सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।"[5]

पं० तुलसीरामजी शास्त्री—"जो शान्त हुए वैर (दुश्मनी) को पुनः प्रज्वलित नहीं करता और जो घमण्ड नहीं करता, न नाश को प्राप्त होता और मैं दुर्बल हूँ ऐसा कहके जो अकार्य (दुष्कर्म) नहीं करता उसको श्रेष्ठ **आर्यशील (श्रेष्ठों में शीलवाला)** कहते हैं।"[6]

---

१. वही, पृष्ठ ४५८७.
२. वही, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१२८.
३. "विदुरनीति भा० टीका" पृष्ठ १० [संवत १९५५ वि. में स्वामी यन्त्रालय, मेरठ में मुद्रित व प्रकाशित].
४. विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित (अ० १ श्लो० ३०) प्रथम संस्करण, पृष्ठ २९(२१)[मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वर्ष २०, चैत्र सं० २०२५, अङ्क ७]
५. "महाभारत, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१३४.
६. "विदुरनीति भा. टी." पृष्ठ ३९

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—"......श्रेष्ठजन अत्यन्त आर्यशील (श्रेष्ठ स्वभाव वाला) कहते हैं।"[1]

(५४) "दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशील: ॥"
—[महाभारत, उद्योगपर्वणि, प्रजागर पर्व, अ० ३३, श्लो० ११३]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"दान देकर पश्चाताप नहीं करता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है।"[2]

पं० तुलसीराम स्वामी—देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुषों में आर्यशील कहलाता है।[3]

पं युधिष्ठिर जी मीमांसक—दान देकर पीछे से सन्ताप नहीं करता उसे ही उत्तम पुरुष श्रेष्ठ स्वभाव वाला कहते हैं।"[4]

(५५) "श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्याद: पण्डिताख्यां लभेत स: ॥"
[महाभारत, उद्योगपर्वणि प्रजागर पर्व, अ० ३३ श्लो २६]

पं० रामनारायणदत्त जी शास्त्री—"जिसकी विद्या, बुद्धि का अनुसरण करती है और बुद्धि विद्या का तथा जो **शिष्ट पुरुषों** की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वही पण्डित की संज्ञा पा सकता है।"[5]

पं० तुलसीराम जी स्वामी—शास्त्र जिसकी बुद्धि के पीछे चलने वाला तथा बुद्धि शास्त्र के पीछे चलने वाली होती है और जो **श्रेष्ठों** की मर्यादा को नहीं तोड़ता वह पण्डित नाम को पाता है।"[6]

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—"जिसका शास्त्रज्ञान बुद्ध्यनुसारी है और जिसकी बुद्धि शास्त्रानुसारिणी है, जिसने **आर्यों** की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है वह पण्डित संज्ञा को प्राप्त होता है।"[7]

(५६) "आर्ययुक्तारोहकभाणवकशैलखनका...... ।"
[कौटिल्य अर्थशास्त्र ५ अधिकरण, ३ अध्या० योगवृत्तम्]

पाण्डेय पं० रामतेज शास्त्री—"आर्य (शील सम्पन्न सत्पुरुष), युक्तारोहक

१. "विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित (अ० १. श्लो० ११७) पृष्ठ ३६ (७६)
२. "महाभारत, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१३४
३. "विदुरनीति भा० टी० [अ० ३३ श्लोक ११८], पृष्ठ ४०
४. "विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित, [अ० श्लो० ११८] पृष्ठ ४० (८०)
५. "महाभारत, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१२८
६. विदुर नीति भा० टी (अ० ३३ श्लो० ३४), पृष्ठ १२
७. "विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित [अ० १, श्लो० ३४] पृष्ठ ३१ (२३)

(बिगडैल घोड़ों आदि पर सवारी करने वाले)। माणवक (वेद पढ़ने वाले विद्यार्थी), शैलखनक (पर्वत खोदने वाले)……[1]

महर्षि वाल्मीकि और 'आर्य' शब्द

(५७) मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को 'आर्य' कहा गया है—

"आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥"

[वाल्मीकीय रामा०, बालकाण्ड, सर्ग १ श्लो० १६]

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर—"आर्य : (१।१६) = (सर्वपूज्यः) सबको पूज्य।"[2]

(५८) "अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः।"

[वा० रा०, बालकाण्ड सर्ग १ श्लो० ३५]

यहाँ भरत जी ने आर्य भाव से पुरस्कृत होकर बड़े भाई से प्रार्थना की।

(५९) कैकेयी ने जब श्री राम को वनवास की माँग की तो सम्राट् दशरथ ने कहा —"मृते मयि गते रामे वन मनुजपुङ्गवे। हन्तानार्ये समामिवे सकामा सुखिनी भव।" [वा० रा०, अयोध्याकाण्ड, सर्ग १३ श्लो० ५]

पाण्डेय पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—ओ नीच! तू मेरी शत्रु है। नर-श्रेष्ठ श्री राम के वन में चले जाने पर जब मेरी मृत्यु हो जायगी, उस समय तू सफल मनोरथ होकर सुख से रहना।†

(६०) "तदप्रियमनार्मायाय वचनं दारुणोदयं श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयी वाक्यमब्रवीत्।" [वा० रा० अयोध्याकाण्ड सर्ग १९ श्लो० १९]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"अनार्या कैकेयी के उस अप्रिय एवं दारुण वचन को सुनकर श्रीराम के मन में व्यथा नहीं हुई।*

(६१) "अरियाप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो।"

—[धम्मपद, पण्डितवग्गो, ७९।४]

अर्थ—पण्डितजन सदा आर्यों के बताए धर्म में रमण करता है।

(६२) "साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।"

[धम्मयद, सुखवग्गो, २०६।१०]

---

१. कोटिलीयं—अर्थशास्त्रम्" 'रञ्जनाह्वया' हिन्दी टीकयाऽऽटीकितम्, पृष्ठ ३९७ [संवत् २०१६ वि०, पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित]

२. श्री रामायण महाकाव्य का प्रथम भाग, बालकाण्ड, भाषानुवाद, पृष्ठ ४५० [सन् १९४१ ई० स्वाध्याय मण्डल, औंध]

† श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (सचित्र हिन्दी भाषान्तर सहित) प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण [सं २०२४ वि० गीता प्रेस, गोरखपुर] पृष्ठ २२२.

* वही, पृष्ठ २४१

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, एम० ए०—"आर्यों का दर्शन सुन्दर है, उनके साथ निवास सदा सुखदायक होता है।"[1]

(६३) "न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सव्वपाणानं अरियो ति पवुच्चति॥"
[धम्मपद, धम्मठ्ठवग्गो, २७०।१५]

श्री भिक्षु धर्मरक्षितः—"प्राणियों की हिंसा करने से (कोई) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियों की हिंसा न करने से आर्य कहा जाता है।"[2]

(६४) "आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः।"
[आपस्तम्बधर्मसूत्र प्रपा० २, पटल २ खण्ड ४, सूत्र ४]

"आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि-सेवा करें, परन्तु ये शरीर वस्त्र, आदि से पवित्र रहें।"

(६५) "शूद्राणामार्याधिष्ठितानामर्धमासि मासि वा वपनम्, आर्यवद् आचमनकल्पः
[बोधानयधर्मशास्त्र प्रश्न १ अ०५, सूत्र ८९]

(६६) "अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।"
—[श्रीमद्भगवद्गीता २/२]

अर्जुन के युद्ध से विमुख होने पर श्रीकृष्ण जी ने कहा—"यह आनार्यों को प्यारी, परम दुःखदायक और अकीर्ति करने वाली बेहोशी इस बेढंगे अवसर पर तुझ पर कैसे आ चढ़ी?"

इसके विपरीत 'आर्योचित कर्म' है।

पुराण और 'आर्य' शब्द

किसी भी 'पुराण' में 'हिन्दू' शब्द नहीं है, वरन् 'आर्य' शब्द बार बार आया है—

(६७) "आर्यसमयपरिहृताः।"
—[भागवत स्क. ५, अ० १४ श्लोक० २९]

(६८) "आर्यभ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम्।"
—[भागवत, दशमस्कन्ध ("उत्तरार्ध"), अ० ८२, श्लोक १९]

(६९) त्यक्त्वा सुदुस्त्य जसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचस यदगादरण्यम्।"
—[भागवत, स्क० ११ अ० ५ श्लोक० ३४]

---

१. "धम्मपद [कथाओं के साथ पाली और हिन्दी अनुवाद] पृष्ठ १४८ [सन् १९५९ ई० मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स। संस्कृत बुक डिपो, कचौड़ी, गली वाराणसी-१, द्वितीय संस्करण]

२. वही, पृष्ठ १८५.

(७०) दशकोट्य: स्मृता आर्या बभूवु बौंद्धमार्गिण: ।
पञ्चलक्षास्तदा शेषा: प्रमयुर्गिरिमूर्द्ध नि ॥"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, चतुर्थ खण्ड, अ० २१ श्लोक ३३]

(७१) "आर्यास्तांस्ते तु संस्कृत्य विंध्याद्रेदंक्षिणेकृतान् ।"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड ४, अ० २१ लोक ३५]

(७२) "आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे ।"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, चतुर्थखण्ड, अ० २१ श्लो० ५५]

(७३) "अहमार्यश्च भवती वेश्या च बहुभोगिनी ।"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, तृतीय खण्ड, अ० २८, श्लो० ४८][1]

(७४) "यन्नैमिषारण्यमुनीश्वराणां प्रोक्तं पुरात्यास मुनीश्वरेण ।
तस्मादसावादिगुरुर्भवांस्तु द्वितीय आर्यो भुवने प्रसिद्धः ।"
—[शिव महापुराय, कैलास संहिताद्ध अध्याय २३ श्लो० २६]

(७५) न्यासं षडंजं दिग्वंधं विनियोगमशेषत: ।
प्रोक्तावानहमार्य्याणां जगत्सृष्टिविवृद्धये ॥३६॥"
—[शिव महापुराण वायुसंहिता, उत्तरभाग, ७, अ० १३]

(७६) "प्रोक्तवानहमार्य्याणां लोकानां हितकाम्यया ।"
—[लिङ्गपुराण, पूर्वा० अ० ८५ श्लो० २४]

(७७) "आर्य्य: सेनापति साक्षाद् गहनो मुखमर्दन: ।"
—[लिङ्गपुराण, पूर्वा० अ० ८२, श्लो० ९३]

कविवर जयदेव द्वारा "प्रसन्नराघव" नाटक लिखा गया था। इसमें कई स्थलों में 'आर्य' शब्द का प्रयोग है।

(७८) "लक्ष्मण:—आर्यनिसर्गरमणीयोऽयमाराम: ।"[2]

(७९) "लक्ष्मण:—आर्य, अहं त्वेवं तर्कयामि ।"[3]

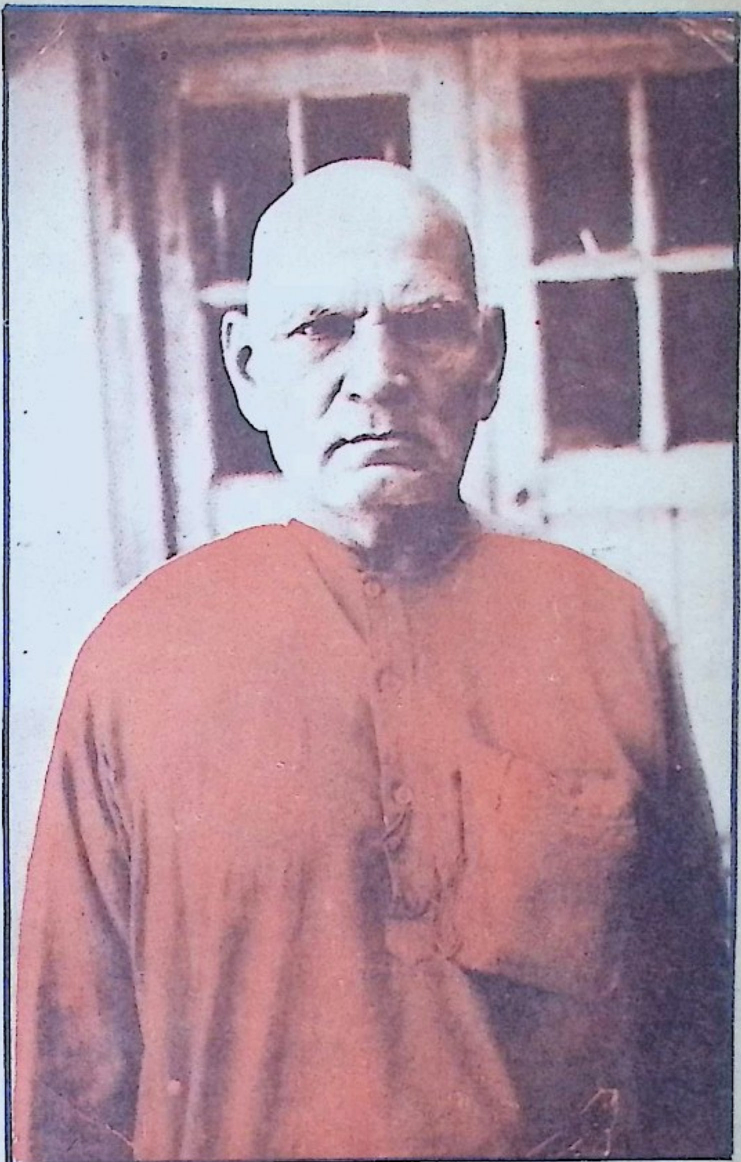
(८०) आज दिन भी पौराणिक पुरोहित अपने यजमानों के यहाँ प्रत्येक अनुष्ठान के पूर्व संकल्प में पढ़ा करते हैं:—

"ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुक...जम्बूद्वीपे भरतखण्डेआर्य्यावर्तैकदेशे । ..." इसमें देश का नाम 'आर्यावर्त' है। आर्यों का आवर्त सदा से व्यवहार का

१. 'भविष्य पुराण' में एक स्थल में 'हिन्दु' शब्द आया है जिस पर आगे विचार किया गया है—(लेखक)

२. "प्रसन्नराघव" पृष्ठ २३ [शाके १८२६ बम्बई मुद्रित, द्वितीय संस्करण]

३. वही, पृष्ठ २४.



स्वामी आत्मानन्दजी सरस्वती यमुना नगर

देश । यदि हमारा नाम आर्य न होता, तो देश का नाम 'आर्यावर्त' कैसे होता ?

(८१) वाराणसी पौराणिकों का परम पवित्र तीर्थ है। इसमें भी विश्वनाथ का मंदिर मुख्य माना जाता है। पौराणिक लोग काशी को विश्वनाथपुरी भी कहते हैं। उस मंदिर के द्वार पर संगमर्मर का शिलालेख है—

"आर्यधर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः"। यदि हमारा नाम 'हिन्दू' होता तो 'हिन्दू' धर्मेतराणां...शब्द होते । इस प्रकार का लेख काशी के अन्नपूर्णा मंदिर के बाहर भी है।

(८२) संवत् १९२७ (सन् १८७० ई०) के श्रावण मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को काशी के ४६ पण्डितों ने मिलकर एक व्यवस्था पत्र लिखा कि हमारा नाम हिन्दू नहीं है।[1]

काशी के विद्वानों की व्यवस्था

श्रीहंसाय नमः

सम्मतीयमर्थो विशुद्धानन्दसरस्वतीस्वामिनां

(श्री हंस को नमस्कार हो, विशुद्धानन्द सरस्वती की इसमें सम्मति है।)

शके युगमनवाश्च चन्द्रमिलिते मासे शुभ श्रावणे।
काश्यां श्रीवरतीर्थराजनिकयादागम्य शुल्केतरे।
पक्षे वै गिरिराज आयति तिथौ चन्द्रस्य वारे सिते,
नीतौ ठाकुरसिंहराजतिलकै हीयवरैः पण्डितैः।

प्रश्नवाक्य—श्रीमद्भागवत ११ स्कन्ध, सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि कलियुग में हंस वर्ण सब कोई कहाते थे और त्रेता में हंसोक्त चार वर्ण चार आश्रम का विभाग होता गया, इस कारण वर्णाश्रमी कहाए। अब कोई हिन्दू नाम करके ख्याल करते हैं सो हिन्दू शब्द की चर्चा कोई शास्त्र में नहीं मिलती। इस हेतु यह जानना चाहते हैं कि हिन्दू कहलाना उचित किंवा अनुचित है ?

उत्तरवाक्य—वर्णाश्रमी देश बोधक जो हिन्दू शब्द है सो यवन सांकेतित है। वर्णाश्रम बोधक जो हिन्दू शब्द है वह भी यवन सांकेतित है। इस कारण हिन्दू कहलाना सर्वथा अनुचित है। यह निर्णय काशी टेढ़ी नीम तले श्री महाराजाधिराज संरक्षित धर्म-सभा में लोगों ने किया।

हस्ताक्षर

१. श्री विश्वनाथ शर्मा, २. श्री बाबूनाथ शर्मा, ३. श्री गृहमुनि शर्मा, ४. श्री सवन मुनि शर्मा, ५. श्री प्यारे शर्मा, ६. श्री हरिहरदत्त शर्मा ७. श्री रामशरण शर्मा, ८. श्री महताव नारायण शर्मा, ९. श्री हर्षनाथ शर्मा, १०. श्री भानुनारायण शर्मा, ११. श्री आदिनाथ शर्मा, १२. श्री नन्दीपति शर्मा १३. श्री श्यामलाल शर्मा,

१. दैनिक पत्र "भारतमित्र" २०.५.१९२५ ई०

१४. श्री प्रभुनाथ शर्मा, १५. श्री हरिहर शर्मा, १६. श्री द्विवेदी बाल शर्मा, १७. श्री ताराचरण शर्मा, १८. राधामहोन शर्मा, १९. श्री नवीन नारायण शर्मा, २०. श्री कैलाश शर्मा, २१. श्री कोलिका प्रसाद शर्मा, २२. श्री मनमोहन शर्मा, २३. श्री स्वदेश शर्मा, २४. श्री गूदड़ शर्मा, २५ श्री रघुनन्दन शर्मा, २६. श्री बच्चू शर्मा, २७. श्री कीर्तिनाथ शर्मा, २८. श्री लाल शर्मा, २९. श्री द्वारकानाथ शर्मा, ३०. श्री राजा राम शर्मा, ३१. श्री बाल शास्त्री, ३२. श्री सखाराम भट्ट, ३३ श्री बापूदेव शास्त्री, ३४. श्री चन्द्रशेखर शर्मा, ३५. श्री देवदत्त शर्मा, ३६. श्री रमापति शर्मा, ३७. श्री श्यामाचरण शर्मा, ३८. श्री जगेश्वर शर्मा, ३९. श्री अम्बिकादत्त शर्मा, ४०. श्री चण्डीदत्त शर्मा, ४१. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, ४२. श्री रघुनाथप्रसाद शर्मा ४३. श्री बाबा शास्त्री.

हिन्दू शब्दो हि यवनेस्वधर्मिजनवोधकः। अतो नार्हन्ति तच्छब्दबोध्यतां सकला जनाः।

"काफिर को हिन्दू कहत, यवन स्वभाषा माहि।
ताते हिन्दू नाम यह, उचित कहैं वो नाहिं ॥"
—श्री दुर्गादत्त शर्मा।

"अर्थात् 'हिन्दू' शब्द मुसलमानों के यहां 'अधार्मिक' (काफिर) के लिए प्रयुक्त होता है। अतः सब मनुष्यों का यह नाम नहीं होना चाहिए।"

इस व्यवस्थापन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, इसमें हम श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती तथा पं० बाल शास्त्री जी के हस्ताक्षर देखते हैं। ये दोनों महानुभाव अपने समय में काशी के सबसे बड़े पण्डित समझे जाते थे।

(८३) **योगी अरविन्द घोष** अपने प्रसिद्ध "What is signifiance of the name of Arya" शीर्षक लेख ६७ में लिखते हैं—

"The word Arya expressed a particular ethical and Social ideal, an ideal of well-governed life, Candour, Courtesy, nobility, Straight dealing, Courage, gentleness, purity, humanity, Compassion, protection of the weak, liberality, observance of Social duty, eagerness for knowedge. respect for the wise, and the learned, the Social, and the Social accomplishments. There is no word in human Speech that has a noble history.

The Arya is who he strives and over comes all outside him and within him that stands opposed to human advance, Self Conquest is the first law of his nature. He over comes mind and its habits. He does not live in a shell of ignorance, inherited prejudices, Customary ideas, pleasant opinion, but knows how to seek and choose, to be large and

१. "वेदों का सत्यस्वरूप" पृष्ठ १८६-१८७ [सन् १९६८ ई० आर्योप प्रतिनिधि सभा वाराणसी, आर्यसमाज बनारस छावनी, भोजू वीर, वाराणसी कैन्ट द्वारा प्रकाशित तुलना करो "Arya" Vol. I, pp. 63, सन् १९१४ ई० [त्रैमासिक पत्र]

flexible in intelligence even as he is firm and strong in his will, for in everything he seeks truth, in everything right, in everything height and freedom. The Arya is a worker and a warrior. Always he fights for the coming of the kingdom of God within himself and the world."

अर्थात्—"आर्य, शब्द एक अतिशय, नैतिक जीवन, सामाजिक आदर्श, सुनियमबद्ध आदर्श जीवन, सरलता, विनय, धैर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, माधुर्य, पवित्रता, दया, निर्बलों की सहायता, सामाजिक सुनियमबद्धता, ज्ञान सम्पादन में उत्सुकता, विद्वानों में आदर एवं गौरव, और सामाजिक विषयों में निपुणता, आदि को व्यक्त करता है। मानववाक् प्रपंच में इससे बढ़कर कोई पद नहीं जो कि ऐसे अतिशय गंभीर इतिहास से युक्त हो।

जो आर्य है, वह ऐसे प्रतिबन्धकों को जीत लेता है जो कि मानव-उन्नति के विरुद्ध अपने अन्दर तथा बाहर रहता हो।

आत्मसंयम ही उसका प्रथम स्वाभाविक नियम है। वह, अपना मन, तथा उसके विषयों को अपने वश में रखा करता है। वह, न अज्ञानावरणों में, न परम्परागत द्वेष भावों, या सम्प्रदायों में, न स्वेच्छा के अनुसार चलने वाले विषयों में वास करता है। वह सत्यशोधन तथा सत्य प्रतिग्रह को खूब जानता है। उसकी बुद्धि स्थिर, अचंचल, होने पर भी, विशाल तथा नम्रतायुक्त होती है। हर एक विषय में वह सत्य की खोज करता है। प्रत्येक में न्याय की खोज करता है। प्रत्येक उन्नति तथा स्वातन्त्र्य की आशा रखता है। आर्य कार्यकर्त्ता है, योद्धा है। सदैव, अपने भीतर और बाहर दैवी सम्पत्ति तथा देव राज्य की प्राप्ति के लिए यत्न करता है।"

(८४) गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन के वार्षिकोत्सव पर **श्री जैनाचार्य जी** ने जैन ग्रन्थों के सुदृढ़ प्रमाणों से अपनी जाति का नाम 'आर्य' सिद्ध किया है।

"मनुष्या द्विविधाः आर्याम्लेछाश्च। तत्र ऋच्छन्ति दूरीभवन्ति सर्वहेयधर्मेभ्य इत्यार्याः। इमां व्याख्यामवलम्ब्य यद्यपि भवन्त एव आर्यानार्य परामर्शं विधातुं शक्नुवन्ति तथापि विषयमिमं विशदीकर्तुं जैनागमनिर्दिष्टानार्यभेदानेव संक्षेपतः प्रतिपादयामि। प्रज्ञापनासूत्रे प्रथमपदे वक्ष्यमाणसरण्या आर्याणां भेदाः प्रतिपादिताः तत्र हि मूलभेदौ द्वौ। ऋद्धिमानार्योऽनृद्धिमानार्यश्च। य आत्वद्धिमान् स एवर्द्धिमानार्यः प्रोच्यते, न तु केवल प्रभृतद्युम्नवान्। तस्य चाऽऽत्मर्द्धिमत आर्यत्माच्चक्रवर्ति बलदेववासु देवदत्तङ्गाचरण रूपाः षट् प्रकाराः प्रदर्शितास्तत्रैव। अथानृद्धिमतामार्याणां क्षेत्रार्यजात्यार्यकुलार्यं शिल्पार्यभाषार्यज्ञानार्यदर्शनार्यचरित्रार्यरूपा नवभेदाः।"[1]

उक्त कथन में श्री जैनाचार्य जी ने बतलाया है कि मनुष्य जाति के दो भेद हैं (१) आर्य (२) म्लेच्छ। सब प्रकार के हेय कर्मों से पृथक् रहे वही 'आर्य' है।

१. साप्ताहिक पत्र "आर्यमित्र" १७ जनवरी सन् १९२४ ई० पृष्ठ ८, कॉलम १ पंक्ति २१ से।

आर्यों के दो भेद हैं—(१) ऋद्धिमान् आर्य (२) अनृद्धिमान् आर्य। जो महापुरुष आत्म ज्ञान और समृद्धिशाली हैं, उन्हें ऋद्धिमानार्य कहते हैं।

अनृद्धिमान आर्य्यों के नौ भेद है—(१) क्षेत्र (देश) के कारण आर्य (२) जाति, परम्परा से आर्य, (३) कुल परम्परा से आर्य, (४) कर्म से आर्य, (५) शिल्प क्रिया से आर्य, (६) भाषा व्यवहार से आर्य, (७) ज्ञान से आर्य, (८) दार्शनिक होने से आर्य और (९) चरित्र बल से आर्य।"

(८५) पारसियों के धर्म ग्रन्थ "जिन्दावस्ता" अस्तवयश्द का १८ वां अध्याय आर्यों की वीरता से भरा हुआ है, उसके प्रारम्भिक श्लोक का अनुवाद इस प्रकार है—"अहुरमज़दा स्पितामा ज़रदुश्त से कहा "मैंने आर्यों को भोजन, पशु समूह, धन, प्रतिष्ठा, ज्ञान भण्डार और द्रव्यराशि से सम्पन्न किया है जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।"[1]

(८६) दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने सिक्खों को यह उपदेश दिया था—
"जो तुम सिख हमारे आरज, देवो सीस धर्म के कारज।[2]
—['पन्थ प्रकाश' कृत ज्ञानी ज्ञानसिंह]

अर्थात् यदि तुम मेरे श्रेष्ठ (आर्य) सिक्ख हो तो अपना (सीस) जीवन वेदोक्त धर्म के कार्य में लगाओ।"[2]

(८७) "तृतीय जो नर नारी आरज, हो रहे निज धर्मी खारज।
पाप कुकर्मन में अति लागे, इस हेतु हो रहे अभागे।"
—[पन्थ प्रकाश][3]

अर्थात्, "जो आर्य नर-नारी इस समय वेद धर्म को छोड़ पाप कर्मों में लग अभागे बन रहे हैं उनके सुधार के लिए मैं यह यज्ञ करना चाहता हूँ।"

(८८) "हो वे जाते यज्ञ पूजा, बढ़े वैदिक रीति।
होवे जा ते देश आर्य, वैदिक धर्म प्रणीति॥"[4]

अर्थात् "मेरे सिक्ख ऐसा यत्न करें कि जिससे यज्ञ, ईश्वर पूजा और वैदिक रीति बढ़े, श्रेष्ठ (आर्य) बने, वैदिक धर्म अनुगामी बने।"

"दशम गुरु जब पुष्कर राजतीर्थ पर गए तो पृथ्वी पंडित ने पूछा कि महाराज! आपका जीवन उद्देश्य क्या है? और सिख पंथ किसलिए चलाया है? तो गुरुजी ने कहा, "पंडितजी! यह पंथ आर्य धर्म की रक्षा के लिए, साधु, ब्राह्मण, गरीब और दीन दुःखी की रक्षाहित हैं और यही सेवा कर रहा है और करता रहेगा।"
—(जन्मसाखी दशमगुरु)[5]

---

१. "जिन्दावस्ता" भाग २, पृष्ठ २८३.
२. स्वामी अमृतानन्दजी सरस्वती कृत "गुरु ग्रन्थ का वैदिक पन्थ अर्थात् खालसा ज्ञान-प्रकाश" पृष्ठ १२३ [सन् १९६५ ई० स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन मंदिर, वैदिक साधन आश्रम, यमुनानगर (अम्बाला)].
३. वही, पृष्ठ १२३.
४.. वही पृष्ठ १२४.
५. वही पृष्ठ १२४.

(८९) पौराणिक श्री स्वामी दयानन्द जी (बंगाली) लिखते हैं—

"......आर्य जाति के लक्षण के विषय में शास्त्र में अनेक प्रमाण मिलते हैं। कर्ममीमांसा में कहा है—

उभयोतोपेता ह्यार्यजातिः।
तद्विपरीता ऽनार्य्याः।

जो जाति चतुर्वर्णधर्म्म और चतुरामधर्म से युक्त है वही आर्य जाति है। वर्णाश्रमधर्म्म विहीन जाति के अनार्य्यजाति है। इसके सिवाय धात्वर्थ और गुणानुसार भी आर्य जाति के अनेक लक्षण होते हैं। यथा—गमन या व्याप्ति अर्थक 'ऋ' धातु से ण्यत् प्रत्यय द्वारा आर्य शब्द के बनने के कारण वेदों के भाष्यकार सायणाचार्य ने आर्य जाति का यही लक्षण किया है कि जो जाति पृथिवी के अनेक स्थानों में जाकर अपनी कीर्ति-ध्वजा की स्थापना करती थी, वही आर्य जाति है। इस विषय में महाभारत में भी प्रमाण मिलता है। यथा—

म्लेच्छाश्चाऽन्ये वहुविधाः पूर्वं ये निहता रणे।
आर्याश्च पृथिवीपालाः।

पूर्वकाल में वहुत प्रकार की अनायजाति को युद्ध में परास्त करके जो जाति पृथिवी की अधिपति हो गई थी, वही आर्य जाति है।......"[1]

(९०) प्रो० शिवदत्त जी ज्ञानी, एम० ए० लिखते हैं—

"**आर्य-हिन्दू-विवाद**—आज हमारा देश 'हिन्दुस्तान' नाम से जाना जाता है, तथा हम लोग 'हिन्दू' नाम से सम्बोधित किए जाते हैं। साथ ही एक पक्ष इस बात का भी समर्थन करता है कि यह नाम हमारे लिए एक सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। हमारा प्राचीन नाम 'आर्य' है व देश 'आर्यावर्त' व 'भारतवर्ष' कहलाता था। अतएव इस पक्ष के अनुसार हम 'हिन्दू' व 'हिन्दुस्तान' के स्थान में 'आर्य' व 'आर्यावर्त' या 'भारतवर्ष' स्वीकार कर लें। वास्तविक रूप में, हमारे समाज में 'आर्य' शब्द से किसी को घृणा नहीं थी। आर्यसमाज के प्रादुर्भाव के पश्चात् उसके विरोधियों ने 'आर्य' शब्द का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप, आर्य-हिन्दू विवाद का जन्म हुआ। निष्पक्ष भाव से इस प्रश्न पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होगा कि मुस्लिम आक्रमणों के पूर्व हमारे पूर्वज अपने को आर्य ही कहते थे, तथा इस देश को आर्यावर्त या भारतवर्ष कहते थे।

संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' शब्द अप्राप्य—संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' नाम का उल्लेख नहीं आता। कुछ लोग 'हिन्दू' शब्द को ऋग्वेद से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। उनके मतानुसार वेदकालीन आर्य जिस देश में रहते थे उसका नाम 'सप्तसिन्धु'

---

१. "श्री धर्मकल्पद्रुम, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ७५१।७५२ [सन् १९२६ ई० भारत धर्म सिण्डिकेट लिमिटेड के शास्त्र प्रकाशक विभाग, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति .
आपने पृष्ठ ९७० में 'मेरुतन्त्र' के प्रमाण से 'हिन्दू' शब्द को सिद्ध करने का प्रयास किया है जिसकी आलोचना इस लेख में हो चुकी है—(लेखक)

था। उसी सप्तसिन्धु से 'हफ्तहिन्दु' हुआ व बाद में 'हिन्दुस्तान' 'हिन्दू' आदिशब्द बन गए। किन्तु इस मन्तव्य के लिए ऐतिहासिक, साहित्यिक आदि कोई भी प्रमाण नहीं है; भाषा-शास्त्र के नियमों से भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद में किसी देश-विशेष के नाम का उल्लेख नहीं है, किन्तु नदी तथा पर्वतों के नाम निर्दिष्ट हैं। इसी प्रकार भरत, द्रुह्यु, अणु आदि राजाओं के नामों का भी उल्लेख है।† ऋग्वेद में 'सप्त सिन्धु' शब्द का उल्लेख कुछ स्थलों पर आता है। सायण आदि ने उसका अर्थ 'सात नदियों' किया है। वे नदियाँ इस प्रकार हैं—सिन्धु, वितस्ता, शुतुद्री, असिक्नी, परुष्णी, सरस्वती, कुभा (अथवा गंगा व यमुना)। कदाचित् यह शब्द सात नदियों से घिरे हुए देश-विशेष का भी द्योतक हो किन्तु **इससे यह कदापि प्रमाणित नहीं हो सकता कि वैदिक काल में समस्त देश 'सप्तसिन्धु' कहलाता था।'**······

पौराणिक साहित्य में भी विभिन्न स्थलों पर आर्य; 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' आदि नामों का उल्लेख आता है, 'हिन्दू' शब्द कहीं भी उल्लिखित नहीं है।······

इन प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य कितने ही साहित्यिक तथा ऐतिहासिक प्रमाण दिए जा सकते हैं, जिनसे स्पष्टतया यह प्रमाणित होता है कि हमारा देश आर्यावर्त, भारतवर्ष आदि नामों से ही सम्बोधित किया जाता था तथा हमारे पूर्वज अपने को 'आर्य' ही कहा करते थे न कि 'हिन्दू'। 'नाट्य-शास्त्र' (ईसा की दूसरी शताब्दी) के नियम के अनुसार संस्कृत नाटक में नायिका अपने नायक को 'आर्यपुत्र' नाम से सम्बोधित करती है। किसी भी धार्मिक कृत्य का सकल्प लेते समय आज भी "जम्बूद्वीपे भरतखण्डे ·····" आदि शब्दों को उच्चारित किया जाता है। इन प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मुस्लिम आक्रमण के पूर्व हमारे पूर्वज अपने को 'आर्य' तथा अपने देश को 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' आदि कहते थे। ऐसी परिस्थिति में स्वभावतः यह शङ्का हो सकती है कि यदि 'हिन्दू' शब्द प्राचीन व हमारा नहीं है तो आज हम सब अपने को एक स्वर से 'हिन्दू' क्यों कहते हैं? इतिहास की सहायता से यह बात भी समझ में आ जाती है।

'हिन्दू' शब्द का ऐतिहासिक विवेचन—'हिन्दू' शब्द का जन्म 'सिन्धु' से होता है। आधुनिक पारसियों के पूर्वज, जो कि ईरान देश में बसे थे। भारतीय आर्यों को 'हिन्दू' नाम से ही जानते थे। वे स्वतः भी आर्य थे तथा भारतीय भी आर्य थे। ऐसी अवस्था में भारतीयों को विशिष्ट रूप से सम्बोधित करना स्वाभाविक ही था। इसलिए कदाचित् उन्होंने भारतीयों को 'हिन्दू' नदी के पारवर्ती आर्य या 'हिन्दू आर्य' कह कर 'हिन्दू' नाम को उपयुक्त किया होगा। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि प्राचीन ईरान-निवासी संस्कृत 'स' के स्थान में 'ह' का उच्चारण करते थे। संस्कृत भाषा का 'स' जेन्द भाषा में 'ह' हो जाता है। इस प्रकार प्राचीन ईरानियों ने सर्वप्रथम हमारे लिए 'हिन्दू' शब्द प्रयुक्त किया। उनके धर्म ग्रन्थ अवेस्ता (वेनिदाद १/१८)

---

† ऋग्वेद में किसी पहाड़, नदी, राजा प्रभृति के रूढ़ि के नाम नहीं हैं वरन् उनके यौगिक अर्थ कुछ और हैं। ज्ञानी जी ऋग्वेद में किसी देश-विशेष का नाम तो नहीं मानते, पर लेखक के मन में वेद में भूगोल इतिहास खोजने की प्रवृत्ति कार्य कर रही है जिससे मैं नितान्त असहमत हूँ—(लेखक)

में इन सब बातों का स्पष्ट उल्लेख है। यह ग्रन्थ ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी के लगभग का है।

प्राचीन अरब के निवासी भी हमें 'हिन्दू' व हमारे देश को 'हिन्दू' कहते थे। अङ्क गणना का नाम उन्होंने 'हिन्सा' रखा था। जो 'हिन्द-सा' से बना है, जिसका मतलब होता है हिन्द अथवा भारतवर्ष के समान। कुछ विद्वानों का यह भी मन्तव्य है कि प्राचीन अरबी साहित्य में 'हिन्द' 'हिन्दू' आदि नामों का उल्लेख आता है। अरब के निवासी भी ईरानियों के समान 'हिन्दू' नामों का प्रयोग करने लगे। प्राचीन यूनानियों का भारतीयों से प्रत्यक्ष सम्पर्क सर्वप्रथम ईरान में हुआ था। इस लिए उन्होंने भी ईरानियों के समान भारतीयों के लिए 'हिन्दू' शब्द प्रयुक्त किया। किन्तु यह 'हिन्दू' शब्द यूनानी भाषा में 'इण्डु' अथवा 'इण्डो' हो गया' और भारत वर्ष 'इन्डिका' कहलाने लगा जिस पर से 'इन्डिया' व 'इन्डियन' नाम पड़े। जिन-जिन विदेशियों के सम्पर्क में भारतीय आए, उन्होंने 'हिन्दू' शब्द के किसी विकृत रूप का प्रयोग किया। प्रसिद्ध चीनी यात्री च्वेनचेङ् (ईसा की ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) भी अपने ग्रन्थ में भारत के लिए 'मिन्टु' नाम प्रयुक्त करता है और यह शब्द 'हिन्दू' से बना है। इसी प्रकार मुसलमानों ने भारतीयों को 'हिन्दू' तथा 'भारतवर्ष' 'हिन्द' अथवा 'हिन्दोस्ताँ' नाम से सम्बोधित किया। कतिपय सज्जनों का मत है कि 'हिन्दू' शब्द फारसी भाषा का है तथा इसका अर्थ काला बदमाश, गुलाम आदि होता है व मुसलमानों द्वारा ही यह नाम सर्वप्रथम हमको दिया गया। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण तो यह सिद्ध करते हैं कि मुसलमानों के जन्म के पूर्व भी 'हिन्दू' शब्द का अस्तित्त्व था। यदि किसी शब्द का अर्थ अन्य भाषा में बदल जाये तो उससे भयभीत नहीं होना चाहिए।

'हिन्दू' शब्द का अपनाया जाना—मुसलमानों के आगमन काल में हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं ने अपना आधुनिक रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। इस विकास पर मुस्लिम शासकों का भी प्रभाव पड़ा। अरबी, फारसी आदि भाषाओं के कितने ही शब्द हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में पाये जाते हैं। उर्दू भाषा का प्रादुर्भाव भी इस प्रभाव का एक उदाहरण कहा जाता है। इसी प्रकार इन भाषाओं ने 'हिन्दू' 'हिन्दुस्तान' आदि शब्द भी अपना लिए। इसी समय भारत का सामाजिक संगठन ढीला-सा पड़ गया था। शक, हूण, आदि के समान मुस्लिमों को पचा लेने के बदले भारतीय समाज अपनापन खोकर उनसे प्रभावित हुआ व उसने 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान' आदि नाम अपना लिए। हिन्दी आदि भाषाओं के साहित्य में भी 'आर्य' आदि के बदले 'हिन्दू' शब्द ही प्रयुक्त किया जाने लगा। हिन्दी साहित्य में तो प्रारम्भिक काल से ही इन शब्दों को अपना लिया गया था जैसा कि चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासौ' से स्पष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'हिन्दू' तथा 'हिन्दुस्तान' नाम मुस्लिम आक्रमणों के पश्चात् भारतीय साहित्य तथा बोलचाल में प्रचलित हुए। किन्तु संस्कृत साहित्य में तो 'आर्य', 'आर्यावर्त' 'भारतवर्ष' आदि नाम ही प्रयुक्त होते रहे।

उपसंहार—सारांश में यह कहना चाहिए कि वैदिक काल से 'आर्य' 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' आदि नाम प्रचलित थे। 'हिन्दू' नाम का सर्वप्रथम प्रयोग ईरानियों

ने किया। अरब, यूनान, चीन आदि के प्राचीन निवासियों ने भी इसी शब्द के विभिन्न अपभ्रंशों का प्रयोग किया। मुस्लिमों ने भी इसी नाम को अपनाया। मुस्लिम शासन में भारतीय अपनी संस्कृति से बिछुड़ने लगे व विदेशियों से प्रभावित होकर 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान' आदि नामों का प्रयोग करने लगे। किन्तु भारतीयों को चाहिए कि वे अपने प्राचीन नामों को ही अपनायें, क्योंकि 'आर्य,' 'आर्यावर्त' 'भारतवर्ष' आदि नाम हृदय में प्राचीन गौरव की दिव्य छटा का आभास कर सकते हैं। राष्ट्रीय भावना की जागृति इन्हीं प्राचीन नामों से हो सकती है न कि विदेशियों द्वारा दिए गए 'हिन्दू' आदि नामों से। प्रत्येक भारतीय को अपने गौरवान्वित प्राचीन नामों को अपनाना चाहिए।"[१]

(६१) महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा डी० लिट् लिखते हैं—

"इस पुस्तक में 'आर्य्य' शब्द का प्रयोग (सिवाय पृ० १४ के) देख कर पाठक यह अनुमान न करे कि यह शब्द आर्यसमाज के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। आजकल 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु उसके स्थान में प्राचीन काल में 'आर्य' शब्द का प्रयोग होता था। 'हिन्दू' नाम वि० सं० की ८वीं शताब्दी से पूर्व के ग्रन्थों में नहीं मिलता है। फारस (ईरान) की भाषा में 'स' के स्थान में 'ह' बोला जाता था जैसे कि 'सप्त' को 'हफ़्त' सिन्धु को 'हिन्दू' आदि इसी से ईरानियों ने सिन्धु के निकटवर्ती निवासियों को हिन्दू कहा। पीछे से सारे भारत के लोग हिन्दू और उनका देश हिन्दुस्तान कहलाया। सिकन्दर के समय के यूनानी लेखकों ने 'सिन्धु' को इंडु (इंडज्) और यहां के निवासियों को 'इंडियन' कहा; इसी से अंग्रेज, भारतवासियों को 'इंडियन' और भारत को 'इंडिया' कहते हैं। प्राचीन काल में 'आर्य' शब्द बड़े गौरव का सूचक था और सम्मान के लिए उसका प्रयोग होता था। रानियां एवं स्त्रियां अपने पति को संबोधन करने में 'आर्यपुत्र', ऐसे ही सासु और श्वसुर के लिए क्रमशः 'आर्या' और 'आर्य' शब्दों का प्रयोग करती थीं। बौद्धों में भी यह शब्द गौरव का बोधक माना जाता था इसी से उनके कई प्रसिद्ध धर्माचार्यों आदि के नाम के साथ आर्य शब्द जुड़ा हुआ मिलता है, जैसे कि आर्य असंग, आर्यदेवः, आर्यपार्श्विक, आर्यसिंह आदि। जैनों में साध्वी अब तक आर्या (आरजा) कहलाती हैं।"[२]

(६२) **डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी एम०ए०, पीएच० डी०, डी० लिट् एम०पी०** लिखते हैं—"...पुराने समय में विदेशी लोग भारत को उसके उत्तर-पश्चिम में बहने वाले महानद सिन्धु के नाम से पुकारते थे, जिसे ईरानियों ने 'हिन्दू' और यूनानियों ने हकार का लोप कर के 'इन्डोज' कहा। लेकिन भारतवर्ष का नाम इण्डिया की तरह केवल भौगोलिक संज्ञा नहीं है। उसका ऐतिहा-

---

१. "भारतीय संस्कृति" पृष्ठ २६ से ३२ तक [विक्रम संवत् २००८ परिवर्तित व संशोधित द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

२. "राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृष्ठ ४२-४३ की पाद-टिप्पणी [सन् १९३७ ई. में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित व व्यास एण्ड सन्स, पुस्तक विक्रेता, अजमेर द्वारा प्राप्य, द्वितीय संस्करण]

सिक महत्व है और इसका अर्थ है—'भरतजन' का देश, अथवा भारतीय आर्य संस्कृति का क्षेत्र। जिसके मुख्य प्रचारक भरत लोग थे।......"[1]

इससे स्पष्ट प्रकट है कि मुकर्जी जी की सम्मति में 'हिन्दु' नाम ईरानियों की देन है, हमारा वास्तविक नाम 'आर्य' ही है।

(९३) भारत के प्रधान मंत्री परलोकवासी **पं० जवाहरलाल नेहरू** का विचार—"...हमारे पुराने साहित्य में तो 'हिन्दू' शब्द कहीं आता ही नहीं। मुझे बताया गया है कि इस शब्द का हवाला हमें जो किसी हिन्दुस्तानी पुस्तक में मिलता है वह है आठवीं सदी ईस्वी के एक तान्त्रिक ग्रन्थ में, और वहाँ हिन्दू का मतलब किसी खास धर्म से नहीं बल्कि खास लोगों से है। लेकिन यह ज़ाहिर है कि यह लफ्ज बहुत पुराना है और अवेस्ता में और पुरानी फ़ारसी में आता है। उस समय, और उस समय से हजार साल बाद तक पश्चिमी और मध्य एशिया के लोग इस लफ्ज का इस्तेमाल हिन्दुस्तान के लिए, बल्कि सिन्धु नदी के इस पार बसने वाले लोगों के लिए करते थे। यह लफ्ज साफ-२ 'सिन्धु' से निकला है और यह 'इंडस' का पुराना और नया नाम है। इस 'सिन्धु' शब्द से हिन्दू और हिन्दुस्तान बने हैं और 'इंडोस' और 'इंडिया' भी। मशहूर चीनी यात्री इत्सिंग ने, जो कि हिन्दुस्तान में सातवीं सदी ईस्वी में आया था, अपनी यात्रा के बयान में लिखा है कि 'उत्तर की जातियां, यानी मध्य एशिया के लिए हिन्दुस्तान को हिन्दू (सीन्-तु) कहते हैं, लेकिन उसने यह भी लिखा है कि "यह आम नाम नहीं है...हिन्दुस्तान का सब से मुनासिब नाम **आर्य देश** है।" एक खास मजहब के माने में 'हिन्दू' शब्द का इस्तेमाल बहुत बाद का है।

हिन्दुस्तान में मजहब के लिए पुराना व्यापक शब्द 'आर्य धर्म' था।[2]

(९४) **डॉक्टर देवसहाय त्रिवेदी एम० ए०, पी० एच० डी०** लिखते हैं—"वेद में 'आर्य' शब्द का प्रयोग निम्नलिखित अर्थ में हुआ है—श्रेष्ठ, कृषक, स्वामी, संस्कृत अतिथि इत्यादि। वैदिक साहित्य में 'अर्य' का अर्थ जाति या राष्ट्र से नहीं है। अतः यह यूरोपीय शब्द आर्यन (Aryan) का पर्याय नहीं कहा जा सकता।"...[3]

---

१. "हिन्दू-सभ्यता" पृष्ठ ५९ [Hindi Civilization का अनुवाद, सन् १९५५ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली]

२. "हिन्दुस्तान की कहानी" पृष्ठ ७८-७९ ["The discovery of India" का श्री रामचन्द्र टण्डन द्वारा अनुवादित, सन् १९४७ ई. में सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली द्वारा, प्रकाशित द्वितीय संस्करण]

३. "प्राड्.मौर्य बिहार" तृतीय अध्याय, पृष्ठ १४ की पादटिप्पणी [सन् १९५४ ई. में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, सम्मेलन-भवन, पटना-३ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण] तुलना करो "स्वामी शङ्करानन्द का ऋग्वैदिक कल्चर आफ प्रीहिस्टरिक आर्यन्स, रामकृष्ण वेदान्त मठ, पृष्ठ २-३

(९५) **श्री नारायण भवनराव पावगी** लिखते हैं—"···आर्य शब्द का अर्थ 'प्रभु' या 'श्रेष्ठ' है। यास्क ने इस शब्द की अपनी व्याख्या में 'आर्य ईश्वर का पुत्र है' (आर्य ईश्वरपुत्रः। नि० पू० खं. ६-२६) लिखा है। प्रसिद्ध विद्वान् सायण 'आर्य' शब्द की यह व्याख्या करते हैं कि जिसकी शरण सब कोई जाय वही आर्य है (आर्यम्, अरणीयम्-सर्वैर्गन्तव्यम्—सायण भाष्य ऋ० वे० १-१३०-८) व इस शब्द का अर्थ कुशल कर्मकाण्डी' (आर्यान्विदुषोऽनुष्ठातॄन्। ऋ. वे. १-५१-८) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन सर्वोच्च जातियों में से एक (उत्तमं वर्णत्रैवार्णिकम्। ऋ. वे. ३-३४-९), यज्ञादिक जैसे धार्मिक कर्मों का करने वाला—(आर्याय यज्ञादिककर्मकृते यजमानाय। ऋ. वे. ६-२५-२) यज्ञ करने के कारण श्रेष्ठ मनुष्य आदि लेते हैं।"[1]

(९६) **श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक, एम. ए., एल. एल. बी. व श्री जगमोहन राव भट्ट एम. ए., साहित्यरत्न** लिखते हैं—"संस्कृत-भाषी भारतीयों ने 'आर्य' शब्द की सृष्टि आदर्श के द्योतक के रूप में की थी। **भारतीयों के लिए 'आर्य' शब्द सुसंस्कृत जन, पूर्ण कुलीन व्यक्ति, आदर्श मनुष्य, अतिमानव का द्योतक था।** महान् आदर्शवादी एवं आचरण की शुद्धता के दृढ़ पोषक व्यक्ति होने के कारण उन लोगों ने 'आर्य' की कल्पना उद्विकास की ऐसी स्थिति में की जिसमें पहुंच जाने की आकांक्षा, अभिलाषा प्रत्येक को करनी चाहिए।

इस सत्य का, सभी भारतीयों के लिए आदर्श वाक्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् 'सर्व विश्व को आर्य बनाओ' से बढ़ कर और कौन सा उत्तम प्रमाण होगा! यदि 'आर्य' शब्द किसी जाति का द्योतक रहा होता, तो उपर्युक्त आदर्श वाक्य प्रयोग एवं व्यवहार में नहीं आता क्योंकि जाति-भावना की दृष्टि से प्रबुद्ध व्यक्ति, संसार को अपने समुदाय में सम्मिलित करना तो दूर, अपनी सत्ता सर्वथा पृथक् बनाए रखने में ही विश्वास रखते हैं।

'आर्य' शब्द आदर्श व्यक्ति का द्योतक था, किसी जाति का नहीं। यह भगवान् श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन की भर्त्सना निम्न शब्दों द्वारा किए जाने से पुनः सिद्ध होता है—

(१) कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्, अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।
(२) क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते, क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥
(३) हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

भगवान् श्री कृष्ण दिव्यावतार होने के कारण स्वयं को कभी भी एक ही जाति से बाँध कर रखते एवं अन्य लोगों को हीन भावना से देखते—ऐसा कभी नहीं हो सकता था।

---

१. "आर्यों का मूल स्थान" पृष्ठ १८७ [लेखक अंग्रेजी पुस्तक "दि आर्यावर्टिक होम एण्ड दि आर्यन क्रेडल इन दि सप्ट सिंधुज" का पं० देवीदत्त शुक्ले द्वारा अनुवादित, संवत् १९८६ वि. 'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस, कल्याण-बम्बई द्वारा प्रकाशित]

प्राचीन भारत में पति अथवा राजा को सम्बोधन करते समय 'आर्य' शब्द का नित्य व्यवहार करना भी एक अन्य प्रमाण है। पति के लिए व्यवहार में आने वाला एक अन्य शब्द 'वर' है। संस्कृत में 'वर' शब्द अत्यधिक श्रेष्ठ व्यक्ति का द्योतक है। अतः 'आर्य' शब्द भी उसी भावना का समानार्थक है।"...[1]

आक्षेपों के निराकरण

(९७) कुछ पौराणिक हिन्दू सभाई प्रभृति आग्रह करते हैं कि 'हिन्दू' शब्द मन्त्र-कालीन है। वैदिक मुनि स्वामी हरिप्रसाद जी उदासीन ने "स्वाध्याय-संहिता" में कुछ प्रमाण दिए हैं जिनको सभी पौराणिकों ने प्रतिलिपि कर ली है। पं० कालूराम शास्त्री, अमरौधा ने "हिन्दु-शब्द-मीमांसा"[2], पं० माधवाचार्य शास्त्री, विद्याभास्कर पं. श्रीकण्ठशास्त्री, प्राच्य व्याकरणाचार्य, हिन्दी प्रभाकर ने "हिन्दु और हिन्दुराष्ट्र"[3], पं. दीनानाथ शास्त्री सारस्वत ने "श्री सनातन धर्मालोक चतुर्थ सुमन,[4] स्वातन्त्र्य वीर श्री विनायक दामोदर सावरकर बार. ऐट-लॉ. ने "हिन्दुत्व"[5]; हिन्दुत्व के पञ्च प्राण"[6]; प. कमलाकान्त त्रिपाठी शास्त्री ने "हिन्दु शब्द की प्राचीनता"[7]; श्री र० प्र० त्रिवेदी भूतपूर्व जज. इटावा, ने "हिन्दू-नाम"[8] पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'हिन्दू' शब्द की वकालत हो गई है।

पं० कालूराम शास्त्री ने कोषों का प्रमाण दिया है जो वैदिक मुनि जी के दिए गए प्रमाणों की प्रतिलिपि मात्र है जिनका उत्तर पीछे दिया जा चुका है। श्री र० प्र० त्रिवेदी की पुस्तक में कोई प्रमाण नहीं है और ऊटपटांग भाषा में है।

---

१. "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" ("Some blunders of Indian Historical Research." का हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ २४३-२४४ [सन् १९७१ ई., कौशल पॉकेट बुक्स, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित, पाकेट माला में प्रथम]

२. संवत् १९९१ वि. में पं० कामताप्रसाद दीक्षित, अमरौधा जि० कानपुर द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण

३. संवत् २०१२ माधव पुस्तकालय, धर्मधाम कमलानगर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति

४. संवत् २११ में श्री सनातनधर्मालोक ग्रन्थमाला, कार्यालय फर्स्ट बी. १९, लाजपत नगर, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

५. राजपाल एण्ड सन्ज, अनारकली, लाहौर द्वारा प्रकाशित, संशोधित संस्करण श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार द्वारा अनुवादित.

६. १९७१ ई० में भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित.

७. भारत कम्पनी, गन्ना स्ट्रीट, लखनऊ द्वारा प्रकाशित,

८. सितम्बर सन् १९५० ई० में ब्रह्म प्रेस, इटावा द्वारा मुद्रित और लेखक द्वारा प्रकाशित.

श्री सावरकर जी ने भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व अ० ५ का"... हप्तहिन्दु-भविनी च नपुंसेया गुरुण्डिका" का प्रमाण "हिन्दुत्व" पृष्ठ ६। यही प्रमाण उन्होंने "हिन्दुत्व के पञ्च प्राण" पृष्ठ १२ में दिया है। यहाँ भविष्य पुराणः प्रतिसर्गपर्व अ. २ दिया है।

पं० माधवाचार्य शास्त्री ने उपर्युक्त प्रमाण को "हिन्दू और हिन्दू राष्ट्र" पृष्ठ १८ में "भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग ५/३६" दिया है।

पं कमलाकान्त त्रिपाठी शास्त्री ने "हिन्दु शब्द की प्राचीनता" पृष्ठ ७ में भी भविष्यत् पुराण के प्रतिसर्ग-पर्व के ३/५/३६ दिया है। शेष प्रमाण "स्वाध्याय संहिता" की प्रतिलिपि मात्र है।

ऋग्वेद १/१६४/२७, आ. ६/१०/५ के मन्त्र से 'हिन्दु' शब्द की प्राचीनता और वैदिकता सिद्ध करेंगे जो इस प्रकार हैं—

'हिं' कृण्वती वसुपत्नी वसूनां,
वत्समिच्छन्ती मनसा अभ्यागात्।
'दु' हाश्विभ्यां पयो अघ्नेयं,
सा वर्धतां महते सौभगाय ॥

यह मंत्र गोवर्णनपरक है। मन्त्र के अनुसार प्रथम और द्वितीय लिखने के अनुसार प्रथम और तृतीय चरण के प्रथम अक्षर को लेने से 'हिन्दु' बन जाता है जिसका अर्थ गोरक्षक होता है।

पं० दीनानाथ शास्त्री ने 'श्री सनातन धर्मालोक ४ पृष्ठ ५३ से १०४ तक में "हिन्दु शब्द की वैदिकता" शीर्षक से लिखा है। इन्होंने पृष्ठ ६२ में ऋ० १/१६४ २७, अथर्व० ६/१०/५ का प्रमाण देकर 'हिन्दू' शब्द को मंत्रकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। आपने भविष्य पुराण ५/३६, में आये 'हिन्दु' शब्द को भी पृष्ठ ७४ में दिया है जिसकी प्रतिलिपि श्री माधवाचार्य शास्त्री ने ५/३६ लिख दिया है। पं० नरदेव शास्त्री कृत "ऋग्वेदालोचन" पृष्ठ १५८-१५६ से भी पं० दीनानाथ शास्त्री ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि 'सप्तसिन्धु' का वर्णन वेद में है।

समीक्षा—'हिन्दू' शब्द वैदिक नहीं है। हमारा वास्तविक नाम "आर्य" ही है जिसके लिए ६३ प्रमाण दिए गए हैं। हिन्दू सभाई व पौराणिकों का दुराग्रहमात्र है कि वे पुराण व वेद से 'हिन्दू' शब्द सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

भविष्यपुराण के प्रमाण पर विचार—जिन लोगों ने 'भविष्यपुराण' का प्रमाण दिया है, पता अशुद्ध व अधूरा है। सावरकर जी ने 'हिन्दुत्व' में 'प्रतिसर्गपर्व अ०५' लिखा है जब कि "हिन्दुत्व के पञ्च प्रमाण" में प्रतिसर्गपर्व अ०२ लिखा है। अध्याय २ प्राण लिखना भयंकर भूल है। अ० ५ लिखा जो अधूरा है, श्लोक संख्या और खण्ड नहीं लिखा है। पं० माधवाचार्य शास्त्री ने भी केवल ५/३६ लिखा है, खण्ड नहीं। पं० कमलाकान्त त्रिपाठी ने प्रतिसर्ग पर्व ३/५/३६ लिखा है जो अशुद्ध है, ३ से क्या तात्पर्य है? यदि खण्ड से है तो अशुद्ध है। पं० दीनानाथ शास्त्री ने भी केवल ५/३६ लिखा है जो अधूरा है। क्या इससे भविष्य पुराण में पता चल जाएगा।

पूरा पता इस प्रकार है:—

"सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका ।।"

—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्वणि, प्रथमखण्डे, पञ्चमोऽध्याय: श्लो० ३६][1]

भविष्य पुराण में इस सर्ग में सण्डे (Sunday), फरवरी (February), सिक्सटी (Sixty) आंग्ल भाषा के शब्द हैं। अश्व को 'अस्प', जानु को 'जैनु' 'सप्त सिन्धु' को 'सप्तहिन्दु' कहा गया है।

प्रति सर्ग पर्व ३ खण्ड ३, अध्याय २ श्लो० २३ में 'ईसामसीह': प्रतिसर्ग प० खण्ड ३, अ० ३, श्लो. ५ में 'महामद' (मुहम्मद), प्रतिसर्ग प. ३, खण्ड ४, अ० २२ श्लो० ६३ से ८७ तक में अंग्रेजों की चर्चा है।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भविष्य पुराण की रचना अत्यन्त नूतन है। यदि 'वेदव्यास' का बनाया हुआ 'भविष्य पुराण' है तो क्या वे आंग्ल भाषाविद् थे? यदि दिव्य दृष्टि से ऐसी बातें लिख गए तो महर्षि दयानन्द जी सरस्वती और उनके आर्यसमाज की चर्चा क्यों नहीं की? पवित्र आर्यावर्त (भारतवर्ष) का दो टुकड़ा हो जाएगा, 'भारत व पाकिस्तान' ऐसी चर्चा क्यों नहीं की? क्या यहाँ तक उनकी दिव्य दृष्टि नहीं पहुँची?

अतः यह प्रमाण आधुनिक व अमान्य है।

इसी प्रकार 'पारिजातहरण नाटक, कालिका पुराण, शार्ङ्गधर पद्धति के नाम से दिए गए श्लोकों का पता क्यों नहीं दिया गया है? न तो वैदिक मुनि, पं० कालूराम शास्त्री और न पं० दीनानाथ शास्त्री और न तो पं० माधवाचार्य शास्त्री ने पते दिये। 'पारिजातहरणनाटक' में '...सहिन्दुरभिधीयते' प्रमाण नहीं है। वैदिक मुनि जी की काली करतूत हैं। संभवत, उन्होंने मनगढ़न्त श्लोकों को बना लिया है।

पं० दीनानाथ शास्त्री के लेख का उत्तर मैं ने अपनी पुस्तक "वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड"[2] पृष्ठ १२९ से १४८ तक में दिया है।

"हिङ्कृण्वन्ती वसुत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुह्यमश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ।।"

—[ऋ० १।१६४।२७; अथर्व० ९।१०।५]

वास्तविक अर्थ—पं० दीनानाथ शास्त्री तथा अन्यान्य विद्वान् ३ से 'हिन्दु' शब्द सिद्ध करते हैं जो उन की भारी भूल है। श्री सायणाचार्य को यह अर्थ नहीं सूझा।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य—"(हिङ्कृण्वती) हिमिति शब्दयन्ती (वसुपत्नी) वसूनां पालिका (वसूनाम्) अग्न्यादीनाम् (वत्सम्) (इच्छन्ती) (मनसा) (अभि) (आ) (अगात्) अभ्यागच्छति (दुहाम्) (अश्विभ्याम्) सूर्यवायुभ्याम् (पयः)

१. संवत् २०१५ वि. (सन् १९५९ ई०) में 'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम प्रेस, बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, पृष्ठ ४२३.

२. संवत् २०२० वि. में आर्य समाज, नया बांस, दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण.

जलं दुग्धं वा (अन्या) हन्तुमयोग्या (इयम्) (सा) (वर्द्धताम्) (महते) (सौभगाय) शोभनानामैश्वर्याणां भावाय।''

अर्थात्—''जैसे (हिङ्कृण्वती) हिंकारती और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अघ्न्या) मारने के न योग्य गौ (अभि, आ, अगात्) सब ओर से आती वा जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल वा दूध को (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्त्तमान पृथ्वी है (सा) वह (वसूनाम्) अग्नि आदि वसु संज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं की पालने वाली (महत्) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (वर्द्धताम्) बढ़े, उन्नति को प्राप्त हो।''

भावार्थ—''जैसे पृथ्वी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे गौएँ अत्यन्त सुख देती हैं। इससे ये गौएँ कभी किसी को मारनी नहीं चाहिए।''[1]

पौराणिक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री व पं० गौरीनाथ झा व्याकरण मनीषी—

'धनशाली धेनु' तीर्थ के लिए, मन ही मन, व्यग्र होकर ''हम्बा'' करती हुई, आती है। यह अविश्वनीकुमारों के लिए दूध दे और महासौभाग्यलाभ के लिए प्रवृद्ध हो।''[2]

दोनों पौराणिक विद्वानों ने भी 'हिन्दु' शब्द का अर्थ नहीं निकाला। यही मंत्र निरुक्त अ० ११ : खंड ४५ में भी आया है :—

भा०—तस्या अघ्न्याया माध्यमिकाया देवतायाः खल्वेषाऽन्यर्गस्ति 'हिङ्-कृण्वती'...''तस्या वसुपत्नीत्वात् तथाऽश्विभ्यां दोहनान्मध्यस्थानत्वं पुष्टं भवति। ऋचः स्पष्टार्थत्वादुक्तं यास्केन सा निगदव्याख्याता। तथापि कर्तव्यदृष्ट्या खल्वस्माभिर्व्याख्यायते।

अर्थ:—अघ्न्या इयं वसुपत्नी वसूनां रश्मीनां पत्नी ''वसवो रश्मयः'' (निघ० १।५) वसूनां रश्मीनां वत्समिच्छन्ती रश्मिभिराकृष्य यदुदकं सूक्ष्मं समर्प्यते हिङ्-कृण्वती—'हिङ्' इत्येवमप्यक्तं स्नेहमयं शब्दं कुर्वती तं वत्समुदकं मनसाऽभ्यगात् अभिप्राप्ता। पुनरश्विभ्यां द्यावापृथिवीभ्यामाकाशस्थपृथिवीस्थ प्रजायमानाभ्यां प्रजाभ्यं तयोरर्थे सा दुग्धां दोग्धुं दोग्धि पयः उदकम्। महते सौभगायास्माकं सौभगायसम्पादनाय वर्धताम्।

''अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ ''(निरु० १२।१) ''इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमाश्विनौ...'' (शत० ४।१।५।१६)।

निरुक्तम्:—'दुहाम्' लोपस्त ''आत्मनेपदेषु'' (अष्टा० ७।१।४१) इत्यनेन

---

१. ''ऋग्वेद भाष्यम्'' द्वितीयाष्टके, तृतीयाध्यायारम्भ, पृष्ठ ६२८ [संवत् १९४३ ई. फाल्गुन शुक्ल पक्ष, प्रयाग नगर, वैदिक मन्त्रालय में मुद्रित]

२. ऋग्वेद संहिता (सरल-हिन्दी-टीका-सहित) द्वितीय अष्टक, पृष्ठ ७२ [ज्येष्ठ १९८९ वैदिक पुस्तकमाला, कृष्णगढ़ सुलतानगंज, भागलपुर द्वारा प्रकाशित, प्रथमसंस्करण]

दुहधातां परस्य 'ताम्' इति लोटि प्रथमैकवचनस्य प्रत्ययस्य तकारलोपः। 'दुग्धाम्' इति प्राप्ते 'दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयम्' उदाहरणं काशिकायाम्।...[1]

पं० चन्द्रमणि जी 'विद्यालङ्कार' पालीरत्नः—'(वसूनां वसुपत्नी) सस्यादि उत्तमोत्तम वस्तुओं का पालक मेघ (मनसा वत्सं इच्छती) दिल से भूलोक-वत्स की इच्छा रखता हुआ (हिङ्कृण्वती अभ्यागात्) गर्जना के साथ आता है। (इयं अहन्या) तब यह मेघ (अश्विभ्यां पयः दुहाम्) व्याप्त स्थावर तथा जंगम, दोनों के लिए जल को दोहता है। (सा महते सौभगाय वर्द्धताम्) वह हमारे महान् सौभाग्य के लिए वृद्धि लाभ करे।

मंत्रार्थ स्पष्ट है। अतः यास्क ने इसकी व्याख्या नहीं की। गो-पक्ष में भी इसी तरह अर्थ समझिए।"[2]

आचार्य पं० भगीरथ शास्त्रीः— मंत्रार्थ—(हिङ् कृण्वती) हिङ्कार करती हुई (वसुपत्नी) उदकों की स्वामिनी यह माध्यमिक वाक् (मेघ) (वसूनाम्) आदित्यरश्मियों अथवा मरुतों के (वत्सम्) वत्सभूत आदित्य को (इच्छन्ती) चाहती हुई (मनसा) मन से (अभ्यागात्) आती है। (सा इयम् अघ्न्या) तब वह मेघ या माध्यमिक वाक् (अश्विभ्याम्) अश्वियों के लिए अर्थात् द्युलोक तथा पृथिवीलोक के लिए (पयः दुहाम्) जल को दोहती है (महते सौभगाय) महान् सौभाग्य के लिए (वर्द्धताम्) वृद्धि को प्राप्त हो। धर्मधुक् पक्ष में स्पष्ट ही है, तथा च—वह गौ (हिङ्कृण्वती) हिङ्कार करती हुई (वसुपत्नी) दूध आदि धनों की स्वामिनी (वसूनाम्) वसु अर्थात् हवियों और स्तुतियों से देवों के आच्छादयिता जो ऋत्विज या यजमान हैं उनके आत्मीय को (इच्छन्ती) चाहती हुई (मनसा) मन से (अभ्यागात्) उनके पास जाती है। (इयं सा अघ्न्या) यह वह गौ (अश्विभ्याम्) अश्वियों के लिए (पयः) दूध को (दुहाम्) दुहती है। यह गौ (महते सौभगाय) महान् सौभाग्य की अभिवृद्धि के लिए (वर्द्धताम्)बढ़े।[3]

पं० भगवद्दत्त जी बी० ए०:—[स्तनयित्नु रूप में] हिंकार करती हुई (वसुपत्नी) वृष्टि उदक रूप धन की अधिपति भूता (वसूनाम्) आदित्य रश्मि का मरुतों के (वत्सम्) आदित्य रूप वत्स का (इच्छन्ती मनसा) चाहती हुई मन से (अभिआगात्) आई। दूध दुहाए (दुहाम्)। अश्वियों के लिए (पय) पयरूप (अघ्न्या) माध्यमिका-वाक् (इयं सा वर्धताम्) यह वह बढ़े, महान् सौभाग्य के लिए।"[4]

अथर्व वेद काण्ड ९ सूक्त १० मंत्र ५ में यही मंत्र आया है।

---

१. स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड रचित "निरुक्तसम्मर्शः" पृष्ठ ८२३-८२४ [चैत्रमास २०२३ वि आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर से प्राप्त]

२. "वेदार्थ-दीपक निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७०२

३. "निरुक्तम्" पृष्ठ ५३५ [१९६३ ई० मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय, २७३६ कूचा चेला, दरियागंज, दिल्ली-६]

४. "निरुक्तशास्त्रम् भाषाभाष्य" पृष्ठ ६०७ [संवत् २०२१ श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, प्रथम संस्करण]

पं. क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी—"(हिङ्‌कृण्वती) गति वा वृद्धि करने वाली (वसुपत्नी) धन की रक्षा करने वाली (वसूनाम्) श्रेष्ठों के बीच (वत्सम्) उपदेशक पुरुष को (इच्छन्ती) चाहने वाली [वेदवाणी] (मनसा) विज्ञान के साथ (अभ्यागात्) सब ओर से प्राप्त हुई। (इयम्) यह (अघ्न्या) हिंसा न करने वाली विद्या (अश्विभ्याम्) दोनों चतुर स्त्री पुरुषों के लिए (पयः) विज्ञान को (दुहाम्) परिपूर्ण करे, [सा] वही [विद्या] (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (वर्धताम्) बढ़े।

भावार्थ यह जो वेदवाणी संसार का उपकार करती है उसको सब स्त्री-पुरुष प्राप्त हो कर यथावत् वृद्धि करें।"[1]

चतुर्वेद भाष्यकार पं. जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसातीर्थ—"जिस प्रकार (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई गाय (हिंक्रण्यती) 'घि' 'घि' इस प्रकार शब्द करती हुई, हंमारती हुई बछड़े के पास आ जाती है उसी प्रकार (वसुपत्नी) देह में मुख्य रूप से वास करने वाले आत्मारूप वसु की 'पत्नी' शक्ति स्वरूप चिति शक्ति (वसूनां) अपने पुत्र रूप अन्य प्राणरूप वसुओं के निमित्त (मनसा) मनोबल से (नि-आगन्) उनको प्राप्त करती है, उन तक पहुँचती है। और जिस प्रकार (इयम्) यह (अघ्न्या) कभी न मारने योग्य, सुशीला, गोमाता (अश्विभ्यां) स्त्री-पुरुषों, गृह के निवासी जनों को (पयः दुहाम्) दूध प्रदान करती है, उसी प्रकार यह चितिशक्ति या ब्रह्ममयी धेनु (अश्विभ्यां) प्राण और अपना या आत्मा और अन्तःकरण दोनों के लिए (पयः) पुष्टिकारक और तृप्तिकारक ज्ञान और बल रुप इस को (दुहाम्) प्रदान करती है। (सा) इस लिए वह अघ्न्या गौ (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य, समृद्धि और सुख के लिए (वर्धताम्) बढ़े।

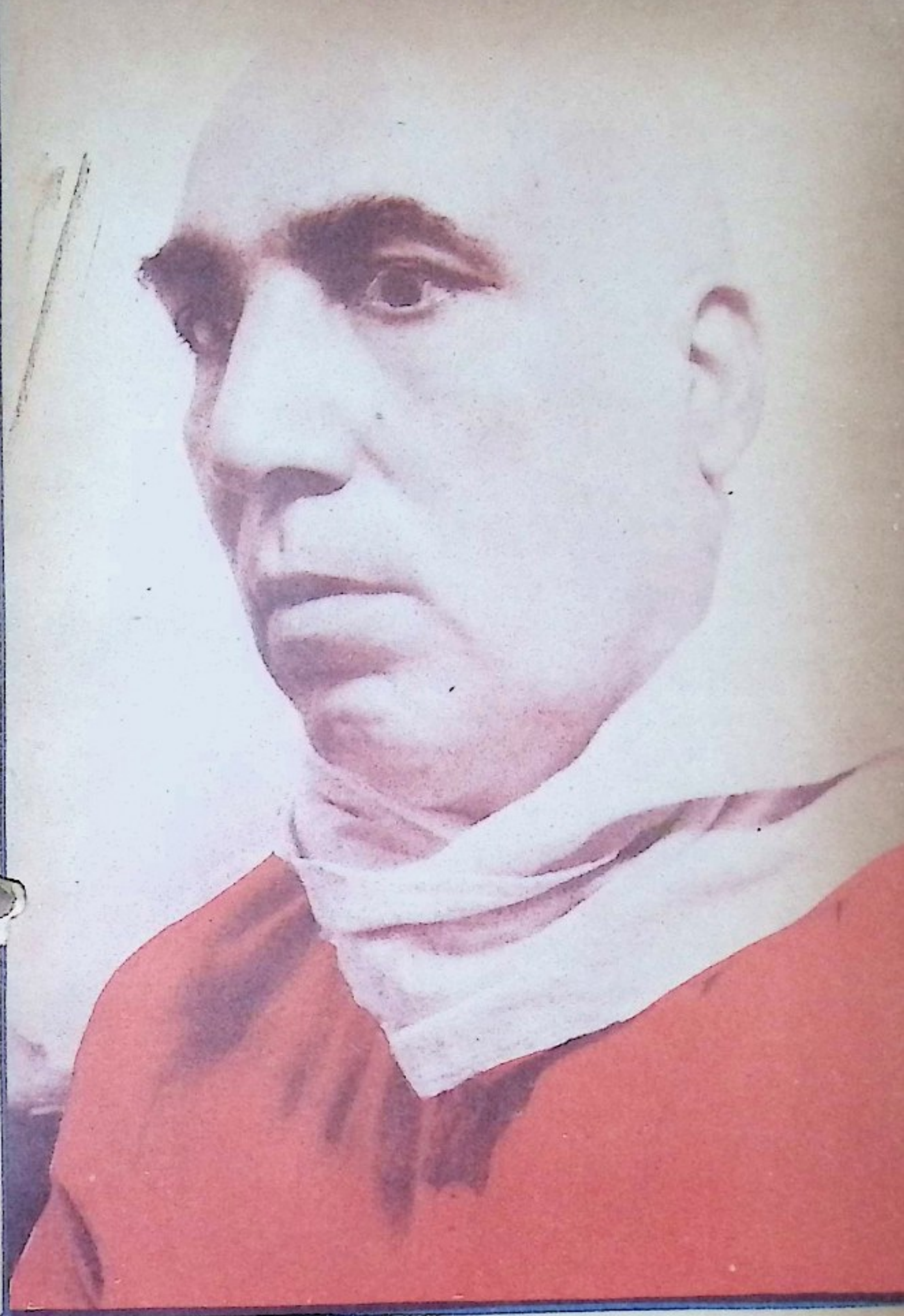
वर्षा के पक्ष में—मेघ रूप गौ गर्जन करती हुई अन्न आदि वसु का पालन करती है। चर, अचर प्राणियों के लिए तृप्तिकारक जल प्रदान करती है।

अध्यात्म में—धर्म-मेघ समाधि की दशा में चिति शक्ति (वसुपत्नी) वसु इन्द्रियों की पालिका है। वह (वत्सम् इच्छन्ती) वत्स, मन चाहती है, और (मनसा अभ्यागत्) मनन शक्ति द्वारा ही उनको प्राप्त करती है। (अश्विभ्यां पयः दुहाम्) प्राण और अपान जीव या अन्तःकरण या सिद्ध और साधक दोनों को रस प्रदान करती हुई (अघ्न्या) अमर, अविनाशी होकर (महते सौभगाय) बड़े भारी परम उत्कृष्ट सेवनीय मोक्षधाम के लिए (वर्धताम्) बढ़े, शक्तिशाली हो।"[2]

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (पौराणिक)—"मन से बछड़े की कामना करती हुई, धन द्वारा पालन करने योग्य यह धेनु हिं शब्द करती धनवानों को प्राप्त हुई है। यह सौभाग्य के लिए हमारे घर में वृद्धि को प्राप्त हो और आश्विनी कुमारों के लिए दूध का दोहन करे।"[3]

---

१. अथर्व वेद भाष्य, नवमं काण्डम् प्रथमावृत्ति (प्रथम भाग) पृष्ठ २१७९.
२. अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य, (द्वितीय खण्ड), द्वितीयावृत्ति (अजमेर संवत् १९७२१ वि, पृष्ठ ३५३-३५४.
३. "अथर्व सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित पृष्ठ ४७७ [सन् १९६० ई. गायत्री तपोभूमि, मथुरा द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]



स्वामी स्वतन्त्रा नन्द जी सरस्वती

पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, व पं. गौरीनाथ झा तथा शर्माजी तीनों पौराणिकों के अर्थ प्राय: एक समान ही है। तीनों ने ही 'हिन्दु' शब्द का समर्थन इस मंत्र से नहीं किया है। अश्विभ्यां का अर्थ 'अश्वनी कुमार' करना अनित्य इतिहास को प्रकट करता है जो अनुचित है।

स्वामी हरिप्रसाद जी 'वैदिक मुनि' व पं. दीनानाथ शास्त्री प्रभृति जो वेदों से 'हिन्दू' शब्द को सिद्ध करते हैं वे भारी भ्रम में हैं।

पं. श्यामसुन्दर लाल जी एडवोकेट मैनपुरी—मासिक पत्र "सार्वदेशिक" दिल्ली, नवम्बर १९२९ ई., पृष्ठ ९ से १५ तक मे "क्या 'हिन्दू' शब्द मन्त्रकालीन है?" शीर्षक लेख में लिखते हैं :—

एक समय था जब कि इस शब्द के अर्थों पर बहुत वादविवाद हुआ करता था आर्यसमाज तथा सनातन धर्म सभा के प्लेटफार्मों से बहुधा पक्ष और विपक्ष में हेतु दिये जाते थे। परन्तु बहुत दिनों से अब यह प्रश्न सर्वथा अनावश्यक समझा गया है और लोगों का यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह नाम भारतवासियों को स्वयं अपने आप हुआ अपने लिये नहीं है किन्तु विदेशियों का दिया हुआ है और समय-समय पर उसके अर्थ भी भिन्न-भिन्न रहे हैं परन्तु इस देश के निवासियों का अपने लिये प्रयुक्त नाम आर्य है जिस से सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य प्राचीन से प्राचीन और नवीन से नवीन भरा पड़ा है। परन्तु अब जब कि जनता में भी यह नाम ओत-प्रोत हो गया है। सरकारी कागजात में भी वही नाम लिखा और पढ़ा जाता है तो उसके अर्थ पर वादविवाद करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसी कारण से आर्यसमाज के प्लेट-फार्म से भी अब इस पर कोई चर्चा सुनने में नहीं आती। और वास्तव में अब इस विषय पर लिखना केवल समय का नष्ट करना है। परन्तु इस उपर्युक्त दशा के होते हुए भी हमारे मान्य स्वा० हरिप्रसाद जी ने पिछले तीन चार वर्षों में आकारण ही इस विषय को उठा कर 'हिन्दु' शब्द मन्त्रकालीन है। इसके सिद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत की है और अपनी 'स्वाध्याय संहिता' की प्रस्तावना में कई पृष्ठों पर निष्फल वाद खड़ा किया है, अतएव इस लेख के लिखने का औचित्य प्रतीत हुआ। आप लिखते हैं कि

हिन्दु देश सम्बन्धी नाम है। मन्त्र काल से इस नाम का उच्चारण दो प्रकार से होता है। एक 'सिन्धु' दूसरा 'हिंदू'। जिस प्रकार कि एक ही अर्थ के देने वाले पाठान्तर जैसे 'श्री' का 'ह्री' और 'सिरा' का 'हिरा' और 'सरस्वती' का 'हरस्वती' वेदों में उपस्थित है इसी प्रकार वास्तव में 'हिन्दु' शब्द भी 'सिन्धु' का रूपान्तर है। जो विचारशील सज्जन फारसी जुबान में हिन्दू नाम का अर्थ काला तथा दास देख-कर यह कहते और लिखते हैं कि हिन्दू हमारा आधुनिक नाम है मन्त्रकालीन नहीं। मन्त्रकालीन हमारा नाम आर्य है। उनको पुनर्विचार करना चाहिए। वास्तव में अब जिस देश का नाम भारत है उसी देश का मन्त्रकालीन नाम 'सिन्धु' है। दीर्घतमा के पुत्र 'कक्षीवान्' ने अपने मन्त्रों में और अष्टाध्यायी के कर्त्ता पाणिनि ने अपने सूत्रों में भारत देश के सिन्धु नाम का उल्लेख किया है। प्रजापाते के पुत्र हिरणयगर्भ ने अपने मन्त्रों में तत्कालीन सिन्धु [भारत] देश की सीमा का उल्लेख इस प्रकार किया है कि— उत्तर में अपनी विसृति के सहित हिमालय की पर्वतमाला पश्चिम में समुद्रान्त।

रसा नदी [भारत सम्राट् और पाणी [बनी] असुरपाल दोनों की सीमान्त नदी और दक्षिण तथा पूर्व में समुद्र। सिन्धु नाम का अर्थ पाणिनि मुनि के सूत्रों से सिन्धु देश का राजा होता है वही हिन्दू नाम का अर्थ है अर्थात् भारतवर्ष का राजा और इसकी पुष्टि में वैदिक मुनि जी ने कुछ वेदों के मन्त्र और उन के अर्थ दिये है किन्तु फुट नोट में यह भी संकेत किया है कि वेद में ऐसी प्रार्थना उपस्थित है जिससे आर्यों को वध योग्य लिखा है अतएव वह प्रार्थना सिन्धु [हिन्दु] की ओर से हो सकती है नकि आर्यों की ओर से। दूसरे-शब्दों में उक्त ग्रन्थकर्ता का तात्पर्य यह है कि—

[१] हिन्दु शब्द मन्त्रकालीन है न कि आधुनिक। क्योंकि वेदादि में 'स' और 'ह' एक दूसरे में परिवर्तित विद्यमान हैं।

[२] सिन्धु शब्द पाणिनि मुनि प्रणीत अष्टाध्यायी के अनुसार सिन्धु देश का राजा है और यही अर्थ हिन्दु शब्द का है।

[३] तत्कालीन सिन्धु (अर्थात् भारत) देश की सीमा भी वेद में वर्णित है।

[४] कहीं कहीं वेदों में आर्यों के वध की प्रार्थना है अतएव सिन्धु (हिन्दु) की ओर से वह प्रार्थना उपयुक्त प्रतीत होती है न कि आर्यों की ओर से।

मैं निवेदन करूंगा कि उपर्युक्त प्रत्येक धारणा स्वा० हरिप्रसाद जी की अयथार्थ हैं। नाम किसी देश वा मानव समुदाय के दो प्रकार से रखे जाते हैं। एक तो उस देश अर्थात् देशनिवासियों का अपने लिये प्रयुक्त नाम और दूसरा अन्य देश वा अन्य देशस्थ पुरुषों का दिया हुआ नाम। कोई नाम किसी देश या समुदाय का अपने लिये स्वयं प्रयुक्त किया हुआ है वा नहीं, इस का निर्णय निम्न बातों से होता है और कोई दूसरा मार्ग उस के निर्णय का नहीं है। अर्थात्

[१] उस देश के शब्द कोष में वह नाम है या नहीं ?

[२] दूसरे देश के साहित्य और कोष में वह शब्द उपस्थित है या नहीं और है तो किस अर्थ में ?

[३] उस देश के साहित्य में वह नाम आया है या नहीं ?

तीनों प्रकार से देखने में प्रतिफल स्वा० हरिप्रसाद के मन्तव्य प्रतिकूल निकलता है। प्रथम "हिन्दु" शब्द न तो वैदिक कोष निघण्टु में और न किसी अन्य प्राचीन संस्कृत कोष में विद्यमान है यहां तक कि किसी अर्वाचीन छोटे से छोटे और बड़े से बड़े संस्कृत नागरी कोष में भी यह शब्द नहीं पाया जाता। यदि किसी दस पांच वर्ष के बने कोष में यह शब्द अब मिला दिया गया हो तो वह सर्वथा उपेक्षणीय है। अतएव हिन्दु शब्द मन्त्रकालीन ही नहीं, किन्तु जहां तक कि अपनी ओर से नामकरण संस्कार का सम्बन्ध है, वह कोई भी कालीन नहीं है। यही हेतु है कि काशीस्थ सुप्रख्यात विश्वनाथ जी के मन्दिर के प्रवेश द्वार पर जिन लोगों के भीतर जाने का निषेध किया गया है उन के लिये "आर्येतरणां" का शब्द प्रयोग किया गया है अर्थात् आर्यों से भिन्न पुरुषों को भीतर जाने का अधिकार नहीं है।

द्वितीय जहां हम इस देश के कोष में इस शब्द का अभाव पाते हैं वहां ही अन्य देशस्थ साहित्य और कोष में इस शब्द को विद्यमान देखते हैं। फारसी साहित्य में

इस शब्द का आना स्वयं ग्रन्थकर्त्ता को स्वीकार है। द्वितीय फ़ारसी जबान के सुप्रसिद्ध कोष "गयासुल्लुगात" में यह शब्द प्रत्यक्षतः विद्यमान है और जहां उस का अर्थ चोर डाकू, काले आदमी के लिये गये हैं वहां खूबसूरत के भी बतलाये गये हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष की उत्तरी पश्चिमी एक घाटी का नाम "हिन्दूकुश" रखा गया है और विदेशी साहित्य और कोप के अनुसार उस का अर्थ हुआ वह स्थान जहां पर 'हिन्दुओं' का वध किया गया। अतएव इस में टुक भी सन्देह नहीं रहता कि जहां तक उक्त दो परीक्षाओं का सम्बन्ध है 'हिन्दु' नाम स्वयं इस देश के निवासियों की ओर से अपने लिये रखा हुआ नाम नहीं है विदेशियों की ओर से उक्त नाम रखा गया है।

तीसरी परीक्षा कि इस देश के साहित्य में हिन्दु शब्द आया है या नहीं? एक प्रकार से सब से बड़ी परीक्षा है। वैदिक मुनि ने जो यह तर्क-शैली ग्रहण की है कि वेदों में ऐसे शब्द पाये जाते हैं जो एक ही अर्थ के बोधक हैं यद्यपि वह कहीं पर 'स' के साथ और कहीं पर 'ह' के रूप में विद्यमान हैं, उस से उन का प्रयोजन कदापि सिद्ध नही होता किन्तु जब वेदों में श्री, ह्री, सिरा, हिरा आदि के दो दो रूप विद्यमान हैं परन्तु उनमें कहीं भी हिन्दु शब्द नहीं आया है तो उपर्युक्त उदाहरण ग्रन्थ कर्त्ता के अनुकूल नहीं किन्तु प्रतिकूल है। यदि श्री, ह्री अथवा सिरा-हिरा आदि की भांति 'सिन्धु' का 'हिन्दु' रूप अभिमत होता तो अवश्य वेदों में कहीं न कहीं विद्यमान होता। पुनः यदि 'सिन्धु' शब्द के अर्थ ग्रन्थकर्त्ता की सम्मति में पाणिनीय सूत्रों के आधार पर 'सिन्धु' देश के राजा के हो सकते हैं तो भी यह प्रतिफल नहीं निकलता कि 'हिन्दु' शब्द के भी यही अर्थ उक्त सूत्रों में अभिमत हैं क्योंकि यदि ऐसा होता तो अष्टाध्यायी जैसे पर्याप्त और विस्तृत अद्वितीय व्याकरण में उस की प्रकटता अवश्य होती। जब यह प्रकटता न उक्त व्याकरण में है और न उसके व्याख्या रूप महाभाष्य आदि बृहत् व्याकरण ग्रन्थों में तो अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि 'हिन्दु' शब्द अपना निज शब्द नहीं है।

अब लीजिये वेदों के कतिपय मन्त्र जिनमें आये हुये 'सिन्धु' शब्द के अर्थ स्व० हरिप्रसाद जी ने सिन्धु देश अधीश्वर वा सिन्धु देश के निवासी के किये हैं। पहला मन्त्र उक्त ग्रन्थकर्ता ने ऋक्० १।१२६।१ दिया है और उसमें आये हुए 'सिन्धो' शब्द के अर्थ 'सिन्धु' देश में अधीश्वर होते वसते हुए के किये हैं। परन्तु यह अर्थ वैदिक शैली के प्रतिकूल है। निरुक्त में 'सिंधव' शब्द नदी नामों में पड़ा है और इसी कारण से स्वा० दयानंद ने 'नद्याः समीपे' का अर्थ किया है। हां, सायणाचार्य जी ने उसके अर्थ सिन्धु देश अथवा लक्षणया सिन्धुतीरे—समुद्र तीरे का किया है जिससे निष्कर्ष केवल यह निकलता है कि उनके समय में जो अर्वाचीन है 'सिन्धु' से 'सिन्धुदेश' का अर्थ भी समझा जाने लगा था परन्तु उनको भी सिन्धु तीरे वा समुद्र तीरे लिख कर निरुक्त के अर्थ की पुष्टि करनी पड़ी है।

उक्त ग्रंथकर्त्ता ने इस विषय में ऋग्वेद के तीन मंत्र और उद्धृत किये हैं अर्थात् ऋग्वेद १।६५।४,७,५,२ तथा ७,६४,२ जिन में से पहले और दूसरे मन्त्र में आये हुए 'सिन्धूनां' शब्द के अर्थ 'हिन्दुओं' के और तीसरे मन्त्र में 'सिंधुपति' के अर्थ हिन्दुओं के पालक किये हैं। परन्तु मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि 'सिंधु' शब्द

अथवा 'सिंधूनां' के अर्थ ऋग्वेद में आये हुए किसी स्थल पर स्वा० दयानंद अथवा सायणाचार्य जी दोनों में से किसी महानुभाव ने ऐसे अर्थ नहीं किये हैं किंतु दोनों भाष्यों में सिंधुः और सिंधूनां के अर्थ नदी और समुद्र अथवा नदियों और समुद्रों के किये गये हैं। यदि सायणाचार्य जी के समय में भी जो वास्तव में अर्वाचीन काल है किसी को यह स्वप्न भी होता कि 'सिंधु' शब्द के अर्थ भारत निवासी के होते या हो सकते हैं तो श्री सायणाचार्य जी सदृश वेदों के भाष्यकार, जो ऐतिहासिक अर्थ के अतिरिक्त दूसरा अर्थ ही वेदों का नहीं जानते, सब से प्रथम वह पुरुष होते जो इस शब्द के अर्थ 'भारत निवासी' के लिखते। मैं उपर्युक्त मंत्रों के अर्थ देकर पाठकों का समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता किंतु यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि उक्त प्रकार के अर्थ करने में ग्रंथकर्त्ता ने केवल साहस से काम लिया है जो कदापि उचित प्रतीत नहीं होता।

पुनः ऋग्वेदः ६-३-३३ तथा १०-३८-३ का अर्थ देते हुए ग्रन्थकर्त्ता का यह संकेत करना कि उन मन्त्रों में आई हुई प्रार्थना आर्यों की प्रार्थना नहीं हो सकती किन्तु हिंदुओं की ओर से हो सकती है, मुस्कराहट उत्पन्न करता है। मानो ग्रन्थकर्ता की दृष्टि में वैदिकीय श्रेष्ठ पुरुष एक भिन्न समुदाय के हिन्दू नामी थे न कि आर्य लोग और इस प्रकार ग्रन्थ-कर्ता ने एक अच्छी सामग्री उन लोगों के लिये उपस्थित की है जो अपने आप को इस देश का 'आदि हिन्दू' के नाम से सबसे पहले का निवासी मानते हैं। हां ग्रन्थकर्ता ने इतनी बात अभी छोड़ रखी है कि 'वेद' वास्तव में उन्हीं आदि निवासियों का धर्म ग्रन्थ है, न कि आर्यों का। जो हो, स्वा० हरिप्रसाद जी का यह बहुत ही अद्‌भुत और विचित्र विचार है।

पहले मन्त्र में "त्वं तान् इन्द्र ! उभयान् अमित्रात् दासा वृत्राणि आर्या च शूरा वधीः······नृतम्" का अर्थ सायणाचार्य जी ने भी यह किया है। "उभय विधान् मित्रान् शत्रून् वधीः के ते उभय विधाः दासो पक्ष पार्यतृन्कर्म विरोधिनो बल-प्रभृतीनसुरात्। आर्या पाणि कमानुष्ठानृत्वेन श्रेष्ठानि वृत्राणि आवरकाणि विश्वरूपा-दीनि च तानुभय विधान् हे शूर त्वं हतवान्" अर्थात् श्रेष्ठ कर्म विरोधी असुरों तथा उन आर्यों को जो कपटी और विश्व को छलते हैं, उन दोनों का विध्वंस कर। तथा दूसरे मन्त्र में "यो नो दासः आर्यो वा पुरुष्टुतः ! अदेवः इन्द्रः······वयं तान् वनुयाम सङ्गमे" हे इन्द्र ! यो दासः कर्मकर; शूद्र आर्यस्त्रैवर्णिकोऽदेवो देवादन्योऽसुरो वा··· ······तान् शत्रून् संग्रामे हन्याम" अर्थात् "हे इन्द्र ! शूद्र हो वा अन्य तीन वर्णों में से कोई आर्य हो जो असुर अर्थात् दुष्ट गुण सम्पन्न है उस को तेरी सहयता से हम लोग हनन करें।" इन दोनों स्थलों पर सायणाचार्य जी ने उन आर्यों का हनन करना बतलाया है जो दुष्ट, कपटी और इसलिये शत्रु हैं जो संग्राम के लिये आह्वान करते हैं। अतएव इस अर्थ के अनुसार भी यह प्रार्थना किसी अनार्य अथवा ग्रन्थकर्ता के जहनी (मानसिक) हिन्दू की ओर से नहीं कही जा सकती किन्तु सायणाचार्य जी के अर्थों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन के विचार में आर्य शब्द जातिवाचक शब्द है न कि गुणवाचक। और इसलिये उक्त अर्थ ग्रन्थकर्ता के अभिमत के और भी प्रतिकूल है क्योंकि सायणाचार्यजी के विचार में 'आर्य' शब्द जातिवाचक बन गया था जब मन्त्रों में आर्य शब्द के साथ अदेव आदि विशेषण लगे हैं और उक्त

ग्रन्थकर्ता स्वंय उन के अर्थ यही करता है अर्थात् यह कि "जो पापात्मा दस्यु और आर्य हैं अर्थात् जो तुझ देव को न मानने वाले दस्यु या आर्य हैं उन का हनन कर" तो नहीं ज्ञात होता कि उक्त ग्रन्थकर्ता को उपर्युक्त संकेत के लिये कौन सा आधार उक्त मन्त्र में दिखलाई देता है कि उक्त प्रार्थना आर्य और दस्यु दोनों से पृथक् एक तीसरे समुदाय हिन्दू नामक की ओर से की गई प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में श्री० स्वा० दयानन्द सरस्वती का दिया हुआ अर्थ अधिक उपयुक्त और बुद्धिगम्य है जिस से "आर्य" शब्द के जातिवाचक होने का दोष भी निवृत्त हो जाता है। वह अर्थ इस प्रकार है:—"हे शूरेन्द्र त्वं तान् मित्रानार्या जो भयान्विभज्य अमित्रान् पृत्सु ·······अर्थात् शत्रुओं और आर्यो का विवेचन कर आर्यों की रक्षा और शत्रुओं का हनन कर।"

इससे आगे स्वा० हरिप्रसाद जी ने 'सिन्धु' शब्द का अर्थ पाणिनीय सूत्रों के आधार पर 'सिन्धु देश का राजा' मानने से सिन्धु देश का निवासी नहीं माना जा सकता। यदि पाणिनि महाराज के समय में 'सिन्धु' शब्द के अर्थ सिंधु देश के निवासी अभिप्रेत होते तो अपने व्याकरण में ('ते तद्राजाः' अष्टा० ४। १ १७५) को लिख कर उस शब्द को राजा होने पर कदापि सीमित न कर देते। अतएव उक्त व्याकरण के अनुसार 'सिन्धु' शब्द के अर्थ सिंधु देश के निवासी के भी नहीं हो सकते और इस बात को ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं आगे चल कर स्वीकार किया है कि श्री पाणिनि मुनि के अनुसार 'सिंधु' शब्द का अर्थ 'सिन्धु देश का राजा' परन्तु 'सैन्धव' अर्थ जो 'सिन्धु' शब्द से बनता है सिन्धु देश के निवासी के हैं और यह तर्क भी अयुक्त है क्योंकि संस्कृत साहित्य के किसी ग्रन्थ या कोष में 'सैन्धव' शब्द का अर्थ 'सिन्धु देश का निवासी' ऐसा नहीं किया गया। उस के अर्थ तो 'घोड़ा' और 'लवण' कोष में पाये जाते है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ-कर्ता की सम्मति में 'सिन्धु' शब्द से 'हिन्दु' शब्द बना है न कि 'सैन्धव' शब्द से। यदि 'सैन्धव' शब्द से 'हिन्दुत्व' शब्द बन कर फ़ारसी भाषा में हिन्दु पढ़ा गया हो तो उसके उक्त शब्द के अन्य देशस्थ पुरुषों द्वारा रक्खे जाने की तो पुष्टि होती है जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं न कि 'सिन्धु' से 'हिन्दु' शब्द बनने की।

स्वा० हरिप्रसाद जी की यह कल्पना कि प्रजापति के पुत्र हिरण्यगर्भ ने अपने मंत्रों में तत्कालीन सिंधु (भारत) देश की सीमा का उल्लेख किया है और उसके लिये जिस प्रकार ऋक्० १०।१२०।४ को बलात् अपने विचार की पुष्टि में नियुक्त किया है दोनों ही बातें विचित्र और वेदों के अर्थो का अनर्थ करने वाली हैं। ऋषि मंत्रकर्ता इस को छोड़ कर मंत्र केवल अर्थ पर विचार करने से स्वा० हरिप्रसाद जी का दिया हुआ उक्त मंत्र का अर्थ कदापि सुसंगत और ग्राह्य नहीं है किंतु अत्यंत असंगत और त्याज्य और नागरी कहावत के अनुसार सर्वथा ऊटपटांग है और स्वा० हरिप्रसाद जैसे विद्वान् के अर्थ पर अनिवारणीय लांछन का दोष आरोपण करने वाला है। मन्त्र यह है—

यस्य इमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सह आहुः।
यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(स्वा० हरिप्रसाद जी का दिया अर्थ) अपनी महिमा (विभूति) के सहित ये (सामने स्थित) हिम वाले पर्वत हैं, रसा [समुद्रान्त रसा] नदी के सहित दक्षिणीय और पूर्वीय समुद्र जिस को कहते हैं ये चारों बड़ी दिशायें [सीमायें] जिस की ओर जिन भुजाओं ने चारों दिशा स्थिर की हैं, वे दोनों भुजायें जिसकी हैं हम उस देवों के देव प्रजापति का श्रद्धापूर्वक हवियज्ञ [देवयज्ञ] से पूजन करते हैं।

प्रथम तो मैंने सोचा कि स्यात् श्री० सायणाचार्य जी ने हमारे उक्त ग्रन्थकर्ता को उपर्युक्त अर्थ करने में सहायता दी हो क्योंकि उक्त सायणाचार्य के समय में जनता की मानसिक अवस्था की दृष्टि से वैसा अर्थ करना कुछ अधिक कौतूहल उत्पन्न करने वाला नहीं समझा जा सकता था। अतएव मैंने सायणाचार्य जी का भाष्य खोलकर देखा। परन्तु मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब कि उक्त महानुभाव के किये अर्थों की दृष्टि से भी स्वा० हरिप्रसाद के अर्थों ने किञ्चदपि पुष्टि नहीं पाई। सायणाचार्य जी ने भी उक्त मन्त्र के अर्थ निम्न प्रकार किये हैं—

"हिमा अस्मिन्संतीति हिमवान् तेन बहुवचनां तेन सर्वे पर्वता लक्ष्यंते। यथा क्षत्रिणो गच्छंतीति। हिमवंतो हिमवदुपलक्षिता इमे दृश्यमाना: सर्वपर्वता यस्य प्रजापतेर्महित्वा महत्वं माहात्म्यमैश्वर्यमित्याहु:। तेन सृष्टत्वात्तद्रूपेणावस्थानाद्वा। तथा रसया [रस जलं] तद्वती रसा नदी। अर्श आदित्वाच्च। जातावेकवचनं। रसाभिर्नदीभि: सह समुद्रं। पूर्ववदेकवचनं। सर्वान्समुद्रान्यस्य महाभाग्यमित्याहु: कथयंति सृष्ट्यभिज्ञा:। यस्य चेमा: प्रदिश: प्राच्यारम्भा आग्नेय्याद्या: कोण दिश ईशानांता वा। तथा बाहू। वचनव्यत्यय:। बाहवो भुजा: भुजवत्प्राधान्य युक्त: प्रदिशश्च यस्य स्वभूता:। तस्मै कस्मा इत्यादि समानं पूर्वेण।

अर्थात् ये सम्पूर्ण हिम रखने वाले दृष्टिगोचर पर्वत जिस परमात्मा की महिमा का द्योतन करते हैं, जिस परमात्मा का ऐश्वर्य नदियों सहित वर्तमान ये समुद्र सृष्टिविज्ञानियों के कथनानुसार कर रहे हैं, तथा जिस परमात्मा की ये सम्पूर्ण दिशायें और उपदिशायें भुजाओं के समान विद्यमान हैं, वही परमात्मा (उपासनीय देव है)।

हम को आश्चर्य होता है कि जब सायणाचार्य जैसे साधारणतया ऐतिहासिक और आकुञ्चित अर्थ करने वाले महानुभाव भी उपर्युक्त मन्त्र के अर्थों को किसी देश विदेश व काल की सीमा में न बांध सके और न ऐसा करने का उन्होंने कोई हेतु देखा तो स्वा० हरिप्रसाद जी जैसे विद्वान् आजकल के विद्योन्नति समय में किस प्रकार मन्त्र का ऐसा अनर्थ करने को उद्यत हो गये हैं। मुझ को तो उक्त स्वामी के अर्थ पर केवल आश्चर्य ही नहीं किन्तु एक प्रकार का रोष भी आता है कि वह वेदों में हिन्दू शब्द को मन्त्रकालीन सिद्ध करने के लिये इस प्रकार बेसिरपैर की बातें जनता के सम्मुख उड़ाना चाहते हैं। जब हम देखते हैं कि उपर्युक्त मन्त्र १२१ वें सूक्त का चौथा मन्त्र है। अर्थात् तीन मन्त्र उस से पहले और छ: मन्त्र उसके पीछे विद्यमान हैं और उन सम्पूर्ण मन्त्रों में सार्वजनिक, सार्वदेशिक देशकाल के बन्धन से मुक्त उपदेश प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं। जिस सूक्त का प्रथम मन्त्र "हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे......" और अन्तिम मन्त्र "प्रजापतेन त्वदेतान्यन्यो.........रयीणां"

एक से एक अधिकाधिक परमात्मा की सार्वभौतिक विभूतियों और ऐश्वर्यों का प्रत्यक्ष भांति में द्योतन करते हुए उसी परमात्मा को उपास्य देव होने का विधान कर रहे हैं तो उस सूक्त में से उपर्युक्त चौथे मन्त्र पर देश-विदेश के वर्णन करने का दोष वेदों के मस्तक पर लगाना यदि केवल साहस मात्र और वह भी लाघव अर्थ में नहीं है तो और क्या है ? हमको दुःख है कि स्वा० हरिप्रसाद ने उपर्युक्त अर्थ को दे कर वेद भगवान् के ही महत्व को घटाने का निष्फल प्रयास नहीं किया है किन्तु विज्ञ पुरुषों कि दृष्टि में यह सिद्ध कर दिखाया है कि वह अपने अभिमत विचार की पुष्टि में कहां तक वेदों को घसीटने के लिये उद्यत हैं।

अतएव सारांश यह है कि स्वा० हरिप्रसाद जी की यह धारणा हिन्दु शब्द मन्त्रकालीन है सर्वथा अशुद्ध और मिथ्या है। हिन्दु शब्द पर वादविवाद चलाना ही निष्प्रयोजन और हानिप्रद है।

पं० दीनानाथ शास्त्री ने श्री पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ प्रणीत ऋग्वेदा-लोचन'' से 'सिन्धु' से 'हिन्दु' दिखलाने का कष्ट किया है, पर आपको जानना चाहिये कि यह उनका मत नहीं है। उन्होंने तो पाश्चात्य पण्डित मेकडानल का मत प्रदर्शन किया है। इसी प्रकार ब्रह्मपक्ष, ऐतिहासिक पक्ष प्रभृति उन्होंने दिखलाया है।

'हिन्दु' शब्द पर उनका क्या मत है, इसके लिए देखिये वे ''वैदिक मुनि फिर मैदान में'' शीर्षक अपने लेख[1] में वैदिक मुनि स्वामी हरिप्रसाद जी के लेख की समालोचना करते हुए लिखते हैं ! —''आप 'हिन्दु' शब्द के परम भक्त हैं किन्तु उस शब्द को वेदों के 'सिन्धु' शब्द के साथ जोड़ने का भरसक प्रयत्न करते हैं। हमने संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' शब्द को ढूंढ़ कर निकालने का प्रबल प्रयत्न किया किन्तु सात सौ वर्ष पूर्व की कश्मीर की राजतरंगिणी को छोड़कर हमको 'हिन्दू' शब्द कहीं नहीं मिला। सिन्धु प्रदेशनिवासियों को उच्चारण की असमर्थता के कारण ईरान और मध्य एशिया के लोग 'हिन्दू' कहते रहे, तभी से इधर के लोगों का नाम 'हिन्दू' पड़ा। पहले-पहले यह 'हिन्दू' शब्द निर्दोष था, फिर कालान्तर में इसके अर्थ विपरीत हुए, जैसे—

पुरानी परशियन	संस्कृत शुद्ध रूप
माह	मास
ह्प्ताह	सप्ताह

(अब उलटे अर्थ देखिए)

संस्कृत का 'देव' पुरानी परशियन में 'राक्षस' का वाचक हो गया—राक्षस का वाचक 'असुर' शब्द देव का वाचक है। 'इन्द्र' शैतान का वाचक बन गया है, इसी प्रकार सिन्धु से बने हिन्दू शब्द के विकृत अर्थ नीच, काला, चोर आदि हो गए। यह पुराने परशियन भाषा का हाल।······

इत्सिग की भारत यात्रा—यह चीनी यात्री भारत में ७वीं शताब्दी में आया था। वह भारतवर्ष का नाम आर्य देश लिखता है—उसका कथन है कि, ''केवल उत्तर

१. साप्ताहिक ''आर्यमित्र'' दिनांक ३० जुलाई १९३६ ई० पृष्ठ ५।

की जातियाँ ही (हू = मुगल अथवा तुर्क) आर्य देश को हिन्दू कहती हैं किन्तु यह नाम बिलकुल प्रचलित नहीं। भारत के लोग प्रायः इस संज्ञा (हिन्दू) को नहीं जानते और भारत के लिये सबसे ठीक नाम है 'आर्यदेश'।"

पं० दीनानाथ लिखते हैं······"पृथ्वीराज के सभाकवि आदिकवि चन्दबरदाई ने अपने कविता ग्रन्थ में इस देश को 'हिन्दव' इस नाम से तथा इस जाति को सर्वत्र 'हिन्दु' नाम से कहा है। 'हम हिन्दु लजवान' 'गति हिन्दू पर साहिसंजि' इत्यादि उसी गीत 'पृथ्वीराजरासो' नामक उसके ग्रन्थ के उदाहरण हैं।"

चन्दबरदाई का यह 'पृथ्वीराजरासो' ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं है। कविराज श्यामलदास जी ने अपने 'पृथ्वीराज-चरित्र' ग्रन्थ में 'पृथ्वीराजरासो' को जाली ठहराया है।

समालोचक-सम्राट् आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं—"इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असम्भव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है।"[1]

आप लिखते हैं—'ऋग्वेद' के १०वें मण्डल के ७५वें सूक्त का ऋषि 'सिन्धुक्षित प्रैयमेध' माना गया है, उसका यही अर्थ है कि सिन्धु देश का शासक या 'सिन्धु देश में रहने वाला'। उस सूक्त में 'इमं मे गंगे! यमुने सरस्वति! शुतुद्रि! स्तोमे सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये! शृणुहि सुषोमया" (ऋ०१०-७५-५) ···।

इन मन्त्रों से सिन्धु देश की सीमा पर प्रकाश पड़ता है। यह याद रखना चाहिये कि ऋग्वेद में नदियों के नामों से देशों को सूचित किया गया है, यही प्राचीन प्रथा है।······"

यहाँ न तो नदियों का वर्णन और न देशों का ही वर्णन है। यह तो आपकी कल्पना है।

देखिये इस मन्त्र का अर्थ महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"इडापिंगलासुषुम्णाकूर्म्मनाड्यादीनां गंगादिसंज्ञास्तीति। तासां योगसमाधौ परमेश्वरस्य ग्रहणात्। तस्य ध्यानं दुःखनाशकं मुक्तिप्रदं च भवत्येव। तासामिडादीनां धारणां सिध्यर्थचित्तस्य स्थिरीकरणार्थस्वीकरणमस्तीति तत्र ग्रहणात्।······[2]

अर्थात् इसी मन्त्र में गंगा आदि नाम इडा, पिंगला, सुषुम्णा, कूर्म और जठराग्नि की नाड़ियों के हैं, उनमें योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य लोग सब दुःखों से तर जाते हैं, क्योंकि उपासना नाड़ियों ही के द्वारा धारण की जाती है।"

---

१. "हिन्दी साहित्य का इतिहास" पृष्ठ ५४ (सम्वत् १९९७ वि० संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण, प्रयाग)।

२. "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः।

वेदों में कहीं, देश विशेष का कोई नाम नहीं है इसकी पुष्टि अनेक विद्वान् करते हैं। यथा—प्रो० बालकृष्ण जी एम० ए०, पी-एच० डी०, एफ० आर० एस-एस; एफ० आर० ई० एस०, एफ० आर० पी० एस० अर्थशास्त्र-महोपाध्याय, गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी हरिद्वार लिखते हैं—"वेदों में से देख-देख कर ऋषियों, राजाओं, देशों, नदियों, पर्वतों के नाम रखे गए। अत: वेदों में पाए जाने वाले उक्त नाम ही आज तक भारत तथा उसके आस-पास की नदियों जातियों, राजाओं व ऋषियों के हैं।"[1]

पं० प्रियरत्न जी आर्य (श्री स्वामी ब्रह्ममुनि) जी "वेदों में गंगा, यमुना आदि नामों का आ जाना इतिहास को सिद्ध नहीं करता है, क्योंकि ये नाम यौगिक हैं, अत: एव लोकप्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। शरीर-गत नाड़ियों के नाम में भी गंगा आदि है और वसिष्ठ अमृत प्राण को कहते हैं ऐसा कथन श्री बाबू भगवानदास जी काशी और श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार आदि कई एक विद्वानों का है।"[2]

प्रो० चन्द्रमणि जी 'विद्यालंकार,' 'पालीरत्न,' वेदोपाध्याय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार लिखते हैं—पाठकगण विश्वामित्र, विपाट्, शुतुद्री आदि नामों को देखकर सन्देह में न पड़ जायें कि इससे तो अनित्य इतिहास का पता चलता है। जब वेद ही एकमात्र ज्ञान का आदिम स्रोत था और वैदिक भाषा ही सृष्टि की आदि में मनुष्यों की भाषा थी, तब इन्हीं वेदों में से चुन-चुन कर नदी आदि के नाम रक्खे जाते थे। ये नाम वैदिक नामों से भिन्न कैसे हो सकते थे।"......[3]

यह ऋ० १०-७५-५ वाला मन्त्र निरुक्त, दैवतकाण्ड, ९ अ० ३ पा० २४ सं० २० श० में आया है। पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार, पालीरत्न उसका अर्थ करते हैं—

"......(गंगे यमुने) हे इडा! हे पिंगला! (शुतुद्रि परुष्णि सरस्वती!) और हे शुतुद्री तथा परुष्णी नामों वाली सुषुम्ना नाड़ी। (मे इमं स्तोमं आसचत) तुम मेरे इस परमेश्वर-स्तवन का सेवन करो। (मरुद्वृधे असिक्न्या) हे सुषुम्ण! तू पिंगला के साथ (आर्जीकीये! वितस्तया सुषोमया) और हे इडा! तू वितस्ता नाम वाली सुषुम्णा के साथ मिली हुई (आश्रृणुहि) मेरे इस परमेश्वर-स्तवन का श्रवण कर।"[4]

---

१. "ईश्वरीय ज्ञान वेद" पस्तक, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ८३।
२. "वेद में इतिहास नहीं" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११३।
३. "निरुक्तभाष्य" पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १५४।
४. "निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृति पृष्ठ ५८७।